मुक्ति संग्राम

वर्ष 1 • अंक 5 • जनवरी 2024 • मासिक • क़ीमत 10 रुपए • प्रकाशन स्थान – ज़िला लुधियाणा (पंजाब)

बहरे हुक्मरानों को सुनाने के लिए नौजवानों की संसद में ललकार

तानाशाही नहीं चलेगी!

संपादकीय

13 दिसंबर 2023 को संसद के भीतर और बाहर कुछ नौजवानों ने गैस कनस्तरों का इस्तेमाल करके रंगीन धुँआ फैलाते हुए मोदी हुकूमत की तानाशाही, देश में मज़दूरों, मेहनतकशों, नौजवानों की आवाज़ को अनसुना करने, बेरोज़गारी, मणिपुर में महिलाओं पर अत्याचार आदि मुद्दों पर इंसाफ़ की माँग करते हुए जोशीले नारे लगाकर रोष प्रदर्शन किया। नौजवानों का कहना है कि हुक्मरानों द्वारा जनता के हक़ की आवाज़ हर जगह अनसुनी की जा रही है। आवाज़ बुलंद करने वाले लोगों का दमन किया जा रहा है, जेलों में ठूँसा जा रहा है। इसलिए अपनी आवाज़ बुलंद करने के लिए उन्होंने रोष प्रदर्शन का यह रास्ता अपनाया है।

नौजवानों ने अपनी आवाज़ बुलंद करने के लिए शांतिपूर्ण ढंग से रोष व्यक्त किया है। उनके इस रोष प्रदर्शन में ऐसा कुछ नहीं था, जिसे देश की सुरक्षा को ख़तरा या संसद की सुरक्षा में घुसपैठ कहा जा सकता हो। लेकिन इसके बावजूद सरकार और विरोधी दलों ने इस मामले पर एक सुर में इन नौजवानों को पानी पी-पीकर कोसा है। विरोधी पक्ष की पार्टियों ने इन नौजवानों द्वारा उठाए गए मुद्दों की बात नहीं की, बल्कि उन्हें तो मोदी सरकार से सिर्फ़ इतना गिला है कि उसने संसद की सुरक्षा की पुख्ता व्यवस्था नहीं की। सभी चुनावी मदारियों ने इन नौजवानों को सख़्त सज़ाओं की माँग की है। इससे एक बार फिर यह साबित हो गया कि जनता के अधिकारों की आवाज़ दबाने के लिए सभी पूँजीवादी

चुनावी मदारी एक ही थाली के चट्टे-बट्टे हैं। जनता की हक़-अधिकारों की आवाज़ से, उसके शांतिपूर्ण संघर्षों से भी, ये कितना डरते-घबराते हैं, इस रोष प्रदर्शन ने इस बार फिर सबके सामने ला दिया है।

इन नौजवानों को बदनाम करने के लिए पूरे पूँजीवादी मीडिया द्वारा दिन-रात ख़बरें चलाकर संसद की सुरक्षा को ख़तरा होने की झूठी कहानी गढ़ी गई है और उनके ख़िलाफ़ ज़ोरदार कुत्साप्रचार किया गया है। लेकिन नौजवानों के इस रोष प्रदर्शन के असल कारणों-मुद्दों की बात किसी ने नहीं की और उनकी आवाज़ दबाने के लिए पूरा ज़ोर लगाया गया है।

मनोरंजन डी और सागर शर्मा ने संसद में दाख़िल होकर रोष प्रदर्शन किया। दो लोगों – नीलम आज़ाद और अमोल शिंदे ने संसद के बाहर रोष प्रदर्शन किया। ललित झा ने संसद के बाहर रोष प्रदर्शन को अपने फ़ोन पर रिकॉर्ड किया था। इन सभी को ख़तरनाक अपराधी मानते हुए गिरफ़्तार किया जा चुका है। उन पर भारत के सबसे ख़तरनाक दमनकारी क़ानूनों में से एक यू.ए.पी.ए. के तहत मुक़द्दमे दर्ज किए गए हैं। स्थानीय अदालतों से लेकर हाईकोर्ट तक ने उन्हें जमानत देने से मना कर दिया है। देश में जगह-जगह उनकी रिहाई के लिए आवाज़ बुलंद की गई है। लेकिन इस आवाज़ को भी जालिम सरकार ने अनसुना कर दिया है।

असलीयत यह है कि ये सभी संजीदा नौजवान हैं। ये मौजूदा शोषणकारी व्यवस्था से पीड़ित, बेचैन महसूस करते हैं। इन नौजवानों के मन में इस मानवद्रोही पूँजीवादी व्यवस्था, यहाँ की सरकारों, संसद-विधानसभाओं, पुलिस-प्रशासन आदि संस्थाओं के प्रति ज़बरदस्त आक्रोश है। उन्होंने शोषण-अन्याय ख़ुद भी सहा है और पूरी मेहनतकश आबादी को इस शोषण की चक्की में पिसते देखा है। वे शहीद भगतसिंह के विचारों से प्रभावित हैं। समाज में घट रहीं अन्याय की घटनाओं के प्रति चिंता प्रकट करते हैं, उनके बारे में सोचते हैं, विचार-विमर्श करते हैं। भारत में बढ़ते फ़ाशीवादी ख़तरे, सांप्रदायिकता और निरंकुशता से चिंतित हैं। वे एक बेहतर समाज चाहते हैं, जहाँ एक इंसान के हाथों दूसरे इंसान का शोषण ना हो, जहाँ लोगों के हक़ की आवाज़ दबाई ना जाए, जहाँ लोगों को धर्म-जाति के नाम पर बाँटा ना जाए, जहाँ मज़दूरों-मेहनतकशों-महिलाओं-दलितों पर अत्याचार ना हो। उनकी भावनाएँ, विचार, मुद्दे संसद पर रोष प्रदर्शन के दौरान लगाए गए नारों से भी स्पष्ट हैं। इनमें से एक नौजवान ललित झा ने कहा है कि उन्हें जेल में डाले जाने से कुछ ख़त्म नहीं हो जाता, यह संघर्ष है, जो आगे चलता रहेगा, कि एक नहीं, कई और झा पैदा होंगे।

ये जुझारू नौजवान मेहनतकश आबादी से संबंध रखते हैं। नीलम आज़ाद एक आम मेहनतकश परिवार की लड़की हैं। उनके पिता हलवाई का काम करते हैं। उनके पास एम.ए. और बी.एड. और एम.-फ़िल की डिग्री है। नेट पास किया हुआ है। नीलम ने कई बार अध्यापक पद की भरती के लिए कोशिश की, लेकिन ग़रीबी और नौकरियों की कमी ने हर जगह उनका रास्ता रोक दिया। एक ग़रीब परिवार में बहुत मेहनत और मुश्किल से भले नीलम पढ़ लिख गई, लेकिन किसी भी तरह का रोज़गार हासिल करने में कामयाब नहीं हो पाईं। वह हरियाणा के जींद ज़िले के एक छोटे-से गाँव में एक पुस्तकालय चलाती हैं। उन्हें महिला पहलवानों के संघर्ष में किए जा रहे प्रदर्शन में भी पुलिस द्वारा गिरफ़्तार किया

(पन्ना 7 पर जारी)

इस अंक में

- बहरे हुक्मरानों को सुनाने के लिए नौजवानों की संसद में ललकार तानाशाही नहीं चलेगी! 1
- इस मज़दूर विरोधी व्यवस्था को बदल डालो 2
- मार्शल मशीन्स लिमिटेड के मज़दूरों की 41 दिन लंबी हड़ताल अहम प्राप्तियों के साथ ख़त्म हुई 3
- भारत की दवाओं के अनेकों नमूने फेल 4
- लोगों के स्वास्थ्य के साथ खिलवाड़ है नक़ली दवाओं का कारोबार 4
- कमरतोड़ महँगाई से पिस रही यूरोप की जनता 5
- भारत में औरतों के विरुद्ध अपराधों में बेहिसाब बढ़ोतरी! 5
- एनिमल – आर.एस.एस.-भाजपा के नाज़ी एजेंडे को स्थापित करती एक ख़तरनाक फ़िल्म 6
- पूरे पंजाब से आई आवाज़, फ़िलिस्तीन को करो आज़ाद! 8
- अपनी असुरक्षा से – अवतार पाश 8
- चिंगारी, जो ज्वाला बनेगी! 9
- रामदेव की काली कमाई के बारे में नए खुलासे 11
- टेसला मज़दूरों की बड़ी हड़ताल 12
- क्यों हो रही हैं भारत में हर घंटे बीस आत्महत्याएँ? 12
- पहले समाजवादी राज्य का आँखों देखा वर्णन करती पुस्तक 'स्तालिन युग' 13
- क्यों उठी रही है संसार में जनसंघर्षों की नई लहर? 15
- पाँच राज्यों में चुनावों के नतीजों के मायने – सांप्रदायिक फ़ाशीवादी उभार से लड़ने के लिए पूँजीवादी पार्टियों से उम्मीद छोड़ो! एक मज़बूत मज़दूर आंदोलन खड़ा करो! 16

मुक्ति संग्राम

दफ़्तर फ़ोन नं.– 83607-66937 **ईमेल –** muktisangram.hindi@gmail.com

सहयोग राशि – एक प्रति – 10 रुपए

सालाना – 120 रुपए (डाक के ज़रिए – 150 रुपए)

मुक्ति संग्राम के लिए सहयोग राशि नीचे दिए गए बैंक खाते/UPI के ज़रिए भेजें।

राशि भेजकर उपरोक्त फ़ोन नंबर पर सूचित ज़रूर कर दें।

UPI No. – 1851 1951 और 83607 66937

UPI ID

MUKTISANGRAAM@SBI

Lakhwinder Singh

A/c No. – 5514 000 7508

STATE BANK OF INDIA

BRANCH – Khanna NGM

IFSC CODE – SBIN0050171

मुक्ति संग्राम यहाँ से प्राप्त करें

- **शहीद भगतसिंह पुस्तकालय, #498, एल.आई.जी. फ़्लैट्स, जमालपुर कालोनी, लुधियाणा – 83607-66937**
- **मज़दूर पुस्तकालय, #4135, ई.डब्ल्यू.एस. कालोनी, ताजपुर रोड, लुधियाणा – 85910-90800**
- **जनचेतना, दुकान नं. 8, पंजाबी भवन, लुधियाणा – 70429-76396**
- **मानव, चंडीगढ़ – 98888-08188**
- **पावेल, सिरसा – 86078-89902**
- **मनन, शिमला – 98162-37848**

पाठक मंच

इस मज़दूर विरोधी व्यवस्था को बदल डालो

कुछ दिन पहले लुधियाणा के औद्योगिक इलाक़े में एक मज़दूर से मिलने उसके कमरे पर गया। वह लुधियाणा के बुढ्ढा नाला इलाक़े में रहता है। इस नाले में लुधियाणा की डाइंग और अन्य कारख़ानों का बिना फ़िल्टर किया हुआ गंदा पानी आकर गिरता है और लुधियाणा के मज़दूर इलाक़ों में बीमारियाँ फैलाता हुआ सतलुज में मिल जाता है। उस मज़दूर का एक छोटा-सा कमरा है, जिसमें ना कोई खिड़की है, ना रोशनदान है। उस कमरे में 3 व्यक्ति रहते हैं। आँगन की 3 मंज़िलों के करीब 24-25 कमरों के लिए तीन बाथरूम हैं। आँगन के ये हालात हैं कि अगर एक कमरे में तड़का लगाया जाए तो सारे आँगन में धुआँ हो जाता है।

उसने खाने में दाल, चावल और रोटी बनाई थी। उन्होंने दाल में प्याज़, टमाटर नहीं डाला हुआ था, तो मैंने स्वाभाविक ही पूछ लिया कि क्या वो हमेशा ही इस तरह की दाल बनाते हैं, तो उसने बताया कि प्याज़ और टमाटर इतने महँगे हो गए हैं कि वो इस तरह दाल खाने को मजबूर हैं। पहले भी जब सरसों के तेल की क़ीमत 200-250 के करीब थी, तो उस समय कुछ मज़दूर पानी में ही तड़का लगाते थे।

भारत में जहाँ इतना अनाज उगता है, जहाँ देश का प्रधानमंत्री अमेरिका के सारे लोगों का पेट भरने के जुमले मारता है, जहाँ देश के सबसे अमीर आदमी की घरवाली 3 लाख रुपए के कप में चाय पीकर अपने दिन की शुरुआत करती है और प्रधानमंत्री रोज़ाना 369166389 रुपए का खाना खाता है, वहाँ बहुसंख्या लोग पीने वाले साफ़ पानी को तरस रहे हैं। आज जब भारत में अंबानी और अदाणी के बीच एक-दूसरे को हराकर देश का सबसे अमीर आदमी बनने की लड़ाई चल रही है। सरकारों द्वारा लगातार पूँजीपतियों के क़र्ज़ माफ़ किए जा रहे हैं। भारत के मीडिया को जंग और क्रिकेट के अलावा कुछ दिखाई नहीं दे रहा है, वहीं भारत की बहुत बड़ी आबादी बढ़ती महँगाई के कारण अपनी छोटी-छोटी ज़रूरतों के लिए भी समझौता करने के लिए मजबूर है।

प्रधानमंत्री मोदी ने रक्षा बंधन के त्योहार पर औरतों को तोहफ़े के नाम पर सिलेंडर की क़ीमत को 200 रुपए कम करके महँगाई कम करने का बहुत बड़े स्तर पर प्रचार करवाया, पर प्याज़, टमाटर और भोजन की अन्य चीज़ों की बढ़ रही क़ीमतों पर चुप्पी साधी हुई है।

ये सारे हालात माँग करते हैं कि इस मज़दूर विरोधी व्यवस्था को जितना जल्दी हो सके, बदल दिया जाए।

– संजु

मज़दूर साथियो,

मुक्ति संग्राम आपका अपना अख़बार है। आप अपने कारख़ाने, अपनी बस्ती में मज़दूरों-मेहनतकशों के हालातों के बारे लिखकर भेजिए। समाज में मज़दूरों-मेहनतकशों के साथ होने वाली बेइंसाफ़ी, लूट-शोषण-उत्पीड़न के और संघर्षों के अपने तजुर्बों के बारे में लिखकर भेजिए। आपको मुक्ति संग्राम में छपी सामग्री कैसी लगती है, आपको इसमें क्या कमियाँ-कमज़ोरियाँ नज़र आती हैं – बेझिझक लिखकर भेजिए। आपके सुझाव मुक्ति संग्राम को बेहतर बनाने के लिए बहुत ज़रूरी हैं।

– संपादक, मुक्ति संग्राम

ऑनलाइन 'मुक्ति संग्राम' पढ़ने के लिए नीचे दिए गए साइट और फ़ेसबुक पन्ने के लिंक पर जाएँ :

साइट – muktisangram.wordpress.com

फ़ेसबुक पन्ना – facebook.com/muktisangrammag

मुक्ति संग्राम के लेख-टिप्पणियाँ और अन्य साम्रगी अपने वट्सअप पर मगँवाने के लिए अपना वट्सअप नंबर और पता इस नंबर पर भेजें :

83607-66937

मार्शल मशीन्स लिमिटेड के मज़दूरों की 41 दिन लंबी हड़ताल अहम प्राप्तियों के साथ ख़त्म हुई

सी.एन.सी. खराद मशीनें बनाने वाली कंपनी मार्शल मशीन्स लिमिटेड (लुधियाणा) के मज़दूरों की कारख़ाना मज़दूर यूनियन के नेतृत्व में हड़ताल 19 दिसंबर की रात करीब 8 बजे समाप्त हो गई है। 9 नवंबर 2023 से शुरू हुई इस हड़ताल में मज़दूर जुझारू ढंग से डटे रहे। मज़दूरों को झुकाने की मालिकों की तमाम साज़िशें नाकाम कर दी गईं।

8 नवंबर को कंपनी ने 5 मज़दूर नेताओं को काम से निकाल दिया था। इसके बाद 9 नवंबर की दोपहर से मज़दूर नेताओं की बहाली, वेतन वृद्धि, बोनस अदायगी, हाज़िरी का सही रिकार्ड बनाने की माँगों को लेकर कंपनी के करीब 90 में से 73 मज़दूर हड़ताल पर चले गए थे और उत्पादन का काम पूरी तरह से ठप्प कर दिया था। हड़ताल के दौरान जब यह स्पष्ट हो गया कि कंपनी मालिक-मैनेजमेंट उनकी ये माँगें नहीं मानेंगे, तो मज़दूरों ने 26 नवंबर को ऐलान किया कि या तो उनकी माँगें मानी जाएँ या उनके वेतन, ग्रेच्युटी, बोनस, छुट्टियों आदि का सारा बकाया दे दिया जाए।

हड़ताल में डटे रहे कुछ मज़दूरों को कंपनी ने वेतन वृद्धि का लालच दिया, 20 के करीब मज़दूरों को कारण बताओ नोटिस और आरोप पत्र जारी किए गए, सभी मज़दूरों को सख़्त कार्रवाई करने के नोटिस भेजे गए, भारी जुर्माने लगाने की धमकियाँ दी गईं। लेकिन इस सबके बावजूद मज़दूर हड़ताल पर डटे रहे और अंत में कंपनी को झुकना पड़ा। हड़ताल में डटे रहे 60 मज़दूरों को क़ानून के मुताबिक़ ग्रेच्युटी, बकाया वेतन, बोनस, छुट्टियों आदि का पैसा देना पड़ा। हड़ताल की यह प्राप्ति इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि मज़दूरों ने अपनी 20-20, 25-25 साल की नौकरी के दौरान देखा है कि नौकरी छोड़ने वाले या नौकरी से निकाले गए मज़दूरों को कभी भी बकाया वेतन, ग्रेच्युटी, बोनस, छुट्टियों आदि का बकाया नहीं दिया गया।

कंपनी की आर्थिक हालत कोरोना लॉकडाउन के बाद काफ़ी बुरी हालत में रही है। जहाँ एक महीने में 40-40 मशीनें बनती रही हैं, वहाँ अब यह संख्या काफ़ी कम हो गई है। पिछले साल के दौरान तो यह संख्या 1-2 मशीनों से लेकर 7-8 मशीनों तक रही है। मंदी का सारा बोझ मज़दूरों पर डाला जाता रहा। वेतन वृद्धि नहीं दी गई और उनका दो-दो, तीन-तीन महीनों का वेतन रोका जाता रहा। कंपनी की इस हालत और मालिक-मैनेजमेंट के मज़दूर विरोधी रवैये से तंग आकर पिछले 3-4 सालों के दौरान करीब 300 मज़दूर या

तो नौकरी छोड़कर चले गए या अनेकों को नौकरी से निकाल दिया गया। लेकिन उन्हें बकाया ग्रेच्युटी, बोनस, छुट्टियों आदि का पैसा तो दूर की बात रही, 2-2, 3-3 महीनों का बकाया वेतन भी नहीं दिया गया। ऐसी हालत में संघर्ष के ज़रिए ग्रेच्युटी, बकाया वेतन, बोनस, छुट्टियाँ आदि का बकाया हासिल करना मज़दूरों की एक बड़ी प्राप्ति है। ग़ौरतलब है कि हड़ताल ना करने वाले और हड़ताल छोड़कर गए मज़दूरों में से कुछ मज़दूरों ने भी हड़ताल के समय के दौरान नौकरी छोड़ दी है, लेकिन उन्हें हिसाब नहीं मिला है।

इनमें से ज़्यादातर मज़दूर कंपनी में फ़रवरी 2023 में यूनियन बनने से पहले नौकरी छोड़ना चाहते थे, लेकिन यूनियन बनने से हर महीने वेतन की अदायगी शुरू होने के चलते वे नौकरी करते रहे। फ़रवरी 2023 में यूनियन बनने के बाद हर महीने 10 तारीख़ तक वेतन अदायगी की माँग मनवाई गई। डेढ़ साल से मालिक द्वारा दबाया गया ई.पी.एफ़. का भुगतान करवाया गया, ई.पी.एफ़. और ई.एस.आई. से वंचित मज़दूरों को यह अधिकार मिले। सेलरी स्लिप लागू हुई। 'मार्शल मशीन्स मज़दूर यूनियन, पंजाब' नाम से यूनियन का रजिस्ट्रेशन करवाने में कामयाबी मिली। मज़दूरों को उम्मीद थी कि शायद कंपनी मंदी की हालत से निकल आए। लेकिन ऐसा नहीं हुआ। मंदी की हालत जारी रहने, यूनियन तोड़ने के लिए नेताओं को निकाले जाने, वेतन वृद्धि लागू ना होने, हड़ताल की प्राथमिक माँगें मनवाने के लिए ज़रूरी ताक़त ना जुटा पाने आदि के चलते मज़दूरों को नौकरी छोड़ने के फ़ैसले पर पहुँचना पड़ा।

मज़दूर नेताओं को नौकरी से निकाले जाने के कारण मज़दूरों को हड़ताल पर जाना पड़ा था। लेकिन मंदी की हालत के दौरान मजबूरीवश की गई इस हड़ताल की प्राथमिक माँगें मनवाने (नेताओं की नौकरी पर बहाली आदि) के लिए ज़रूरी ताक़त मज़दूरों को हासिल नहीं हो पाई। एक तो, मंदी के दौरान काम ठप्प पड़ने का मालिक पर कम असर था। दूसरा हड़ताली मज़दूरों की संख्या कम थी, जिसके चलते सरकारी ढाँचे पर ज़रूरी दबाव नहीं बन पाया। अन्य कारख़ानों के मज़दूरों से ज़रूरी सक्रिय समर्थन हासिल नहीं हो पाया। अन्य कारख़ानों के मालिक भी इलाक़े में मज़दूरों की जुझारू-ईमानदार यूनियन की मौजूदगी को सहन नहीं कर सकते थे, इसलिए बिना शक, उन्होंने भी मार्शल मशीन्स मज़दूर यूनियन के ख़ात्मे के लिए ज़ोर लगाया है। इन कारणों से मालिक-मैनेजमेंट का पलड़ा भारी रहा है और हड़ताली मज़दूर अपनी प्राथमिक माँगें नहीं मनवा पाए और एक क़दम पीछे हटकर हिसाब लेने की माँग पर लड़ाई लड़नी पड़ी, जिस पर उन्होंने कामयाबी भी हासिल की है।

इस हड़ताल की सबसे बड़ी प्राप्ति मज़दूरों का डटकर लूट-शोषण और अन्याय के ख़िलाफ़ संघर्ष करना और इस दौरान प्राप्त की गई चेतना है। फ़रवरी 2023 से हड़तालों और अन्य रूपों में लड़े गए संघर्ष और इस हड़ताल के दौरान मज़दूरों ने कारख़ाना मज़दूर यूनियन के नेतृत्व में जनवादी, योजनाबद्ध और जुझारू ढंग से संघर्ष करना सीखा है। मज़दूरों ने देखा है कि कैसे सारा राजनीतिक/सरकारी ढाँचा पूँजीपतियों के पक्ष में खड़ा है, कि उनके पास एकजुट होकर संघर्ष करने के सिवाय अन्य कोई रास्ता नहीं है। कांग्रेसियों, अकालियों, भाजपाइयों और अन्य पूँजीवादी पार्टियों का, तो परेशान मज़दूरों ने आम आदमी पार्टी का मज़दूर विरोधी चरित्र भी अच्छे से समझा है।

लुधियाणा में बहुत लंबे समय के बाद मज़दूरों की योजनाबद्ध, जुझारू और लंबी हड़ताल हुई है। 41 दिनों की इस हड़ताल के दौरान विभिन्न मज़दूर बस्तियों में पर्चों, नुक्कड़ सभाओं, पैदल मार्चों आदि के ज़रिए मज़दूरों के मसले उभारे गए, समर्थन की अपील की गई। इसका असर इस रूप में भी देखने को मिला है कि अन्य मज़दूरों को लाकर हड़ताल नाकाम करने की मालिकों की कोशिश कामयाब नहीं हो पाई, बल्कि जो मज़दूर हड़ताल में शामिल नहीं हुए थे, उनमें से भी कुछ काम छोड़कर चले गए।

इस हड़ताल की एक प्राप्ति यह भी है कि जहाँ आज पंजाब में (सोशल मीडिया पर) पंजाबी बनाम प्रवासी का झूठा वृतांत गढ़ा जा रहा है, वहाँ इस संघर्ष में पंजाब, उत्तराखंड, हिमाचल, उत्तर प्रदेश और बिहार के मज़दूरों ने एक-दूसरे के कंधे से कंधा मिलाकर लड़ते हुए इस झूठे वृतांत का मुँहतोड़ जवाब दिया है।

मार्शल मशीन्स लिमिटेड के मालिकों के सामने ना झुकने और अनेकों प्राप्तियाँ के गर्व के साथ, कारख़ाना मज़दूर यूनियन के जुझारू झंडे को बुलंद रखने, संघर्ष के दौरान प्राप्तियों-अप्राप्तियों, कमियों-कमज़ोरियों के सबक़ों को अपनाकर आने वाले समय में मज़दूर संघर्ष की चिंगारियाँ अन्य कारख़ानों में फैलाने का संकल्प लेकर मज़दूरों ने पूरे जोश-ओ-खरोश के साथ हड़ताल की समाप्ति की। यह मार्शल मशीन्स मज़दूर संघर्ष की अहम प्राप्ति है, जिसने आने वाले समय में लुधियाणा में मज़दूर संघर्ष को आगे बढ़ाने में सहायक होना है।

हड़तालें मज़दूरों को एकजुट होना सिखाती हैं; उन्हें बताती हैं कि वे केवल एकजुट होने पर ही पूँजीपतियों के विरुद्ध संघर्ष कर सकते हैं; हड़तालें मज़दूरों को कारख़ानों के मालिकों के पूरे वर्ग के विरुद्ध, स्वेच्छाचारी, पुलिस सरकार के विरुद्ध पूरे मज़दूर वर्ग के संघर्ष की बात सोचना सिखाती हैं। यही कारण है कि समाजवादी लोग हड़तालों को 'युद्ध का विद्यालय', ऐसा विद्यालय कहते हैं, जिसमें मज़दूर पूरी जनता को, श्रम करने वाले तमाम लोगों को सरकारी अधिकारियों के जुए से, पूँजी के जुए से मुक्त करने के लिए अपने दुश्मनों के ख़िलाफ़ युद्ध करना सीखते हैं।

- *व्ला.ई.लेनिन*, हड़तालों के बारे में

भारत की दवाओं के अनेकों नमूने फेल
लोगों के स्वास्थ्य के साथ खिलवाड़ है नक़ली दवाओं का कारोबार

भारत की 'केंद्रीय ड्रग मानक कंट्रोल संस्था' द्वारा ताज़ा जारी रिपोर्ट के मुताबिक़ अक्टूबर महीने तक भारत में जाँच की गई दवाओं के 6% नमूने फेल हो गए हैं। छोटी और दरमियानी कंपनियों के मामले में तो 65% कंपनियाँ तयशुदा मानकों से निचले स्तर की दवाएँ बना रही हैं। चाहे अन्य बहुत अहम मामलों की तरह यह रिपोर्ट भी गोदी मीडिया द्वारा दबा दी गई और इस पर कोई चर्चा नहीं हुई, पर इस रिपोर्ट ने फिर से भारत में नक़ली दवाओं और घटिया दवाओं के बेहद बड़े और जानलेवा कारोबार पर सवाल खड़े कर दिए हैं।

भारत में नक़ली और घटिया दवाओं का मुद्दा बार-बार उठता रहा है। दिसंबर 2022 में उज्बेकिस्तान मुल्क़ में खांसी की दवा पीने के कारण 18 बच्चों की मौत हो गई थी। यह दवा भारत में नोएडा स्थित मारिऑन बाइओटेक द्वारा बनाई गई थी। 2022 में ही अफ़्रीकी मुल्क़ गांबिया में ऐसी दवा पीने से 66 बच्चों की मौत हो गई थी। इस मामले के बाद 'विश्व स्वास्थ्य संगठन' तक ने 4 दवाओं की निशानदेही की थी, जो मरीजों के लिए घातक थीं। इन दवाओं के तार भी भारत के हरियाणा स्थित मेडन फ़ार्मा के साथ जुड़े थे। पर इतना सब होने के बावजूद भारत सरकार ने इन कंपनियों के नक़ली और घटिया दवाओं के कुल कारोबार पर कोई पुख्ता कार्रवाई करनी ज़रूरी नहीं समझी। यह पड़ताल करना भी ज़रूरी नहीं समझा गया कि अगर निर्यात होने वाली दवाओं की गुणवत्ता इतनी घटिया और ज़हरीली है, तो भारत के मरीजों को किस तरह की दवाएँ उपलब्ध करवाई जा रही हैं?

भारत में नक़ली और घटिया दवाओं का विशाल कारोबार

भारत में दवा कंपनियों की इस गुंडागर्दी का बड़ा कारण इनका विशाल कारोबार है। भारत दवाओं की पैदावार के मामले में विश्व स्तर पर काफ़ी आगे आता है। दवाओं की विश्व स्तर की माँग का 20%, टीकों का 60% और जेनरिक दवाओं का बड़ा हिस्सा भारत से जाता है। 2021 में भारत का दवाओं का यह कारोबार 42 अरब डॉलर का था, जिसका 2030 तक बढ़कर 130 अरब डॉलर तक हो जाने की संभावना है। इन्हीं अरबों डॉलर के सालाना कारोबार के बल पर कंपनियों की सरकार में अच्छी-ख़ासी जान-पहचान है।

अगर इन कंपनियों की कार्यशैली पर नज़र डालें, तो पता लगता है कि बहुत सारी कंपनियाँ अक्सर कच्चे माल और तैयार माल को बाज़ार में बेचने से पहले उनकी जाँच ही नहीं करतीं, जो कि इस उद्योग के लिए बेहद ज़रूरी होता है। क्योंकि दवाएँ सीधे तौर पर स्वास्थ्य पर असर डालती हैं, ज़िंदगी और मौत का सवाल बन सकता है, इसलिए इनकी बिक्री से पहले इनकी जाँच ज़रूरी होती है। किसी भी दवा की क्षमता तय करते समय कुछ बुनियादी टेस्ट ज़रूरी होते हैं। ये टेस्ट ना करना लोगों की ज़िंदगी से खिलवाड़ करना है, जो अनेकों इंसानी ज़िंदगियों को नुक़सान पहुँचा सकता है। इसलिए बहुत सारी कम गुणवत्ता वाली घटिया दवाएँ और नक़ली दवाएँ बिना जाँच के बाज़ार और मरीजों तक पहुँच जाती हैं और उनके स्वास्थ्य के साथ खिलवाड़ करती हैं।

यहाँ नक़ली दवाओं और कम गुणवत्ता वाली दवाओं में फ़र्क़ समझ लेना भी ज़रूरी है। कम गुणवत्ता वाली दवाएँ वे होती हैं, जिनमें दवा की मात्रा निर्धारित मात्रा से कम होती है, या उनकी रासायनिक संरचना सही नहीं होती। दूसरी ओर नक़ली दवाएँ या मिलावटी दवाएँ वे होती हैं जिनमें गोलियाँ, कैप्सूल या टीकों आदि में असली दवा नहीं होती, दवा की जगह चॉक पाउडर, पानी या महँगी दवा की जगह सस्ती दवा का पाउडर मिला दिया जाता है। इसके अलावा एक्सपायर हो चुकी दवाओं को दोबारा पैक करके बेचने का धंधा भी होता है।

ऐसे हालातों में सरकार को सख़्ती से इन कंपनियों की जाँच करनी चाहिए, पर भारत के असल हालात तो ये हैं कि इस देश में बनाई जाने वाली बहुत सारी दवाएँ तो अंतरराष्ट्रीय मापदंडों पर खरी ही नहीं उतरतीं। ऐसी दवाओं को फेंकने की जगह देश में ही बेचा जा रहा है। और अगर किसी राज्य में बनाई दवा में कोई ख़राबी पाई जाती है, तो उस दवा पर सिर्फ़ उसी राज्य में पाबंदी लग सकती है, अन्य राज्यों में वह पहले की तरह ही बिकती है, क्योंकि भारत में ऐसा कोई क़ानून मौजूद ही नहीं है, जो इन कंपनियों के लिए बाज़ार में बिक रही ग़लत दवाओं को तुरंत बंद करवा दे। और तो और, जब गांबिया और उज्बेकिस्तान में बच्चों की मौत का मामला बढ़ा और बात विश्व स्वास्थ्य संगठन तक पहुँची तो भारत सरकार के स्वास्थ्य मंत्री मंसूख मंडवीय ने पल्ला झाड़ते कहा कि दवाओं में कोई ख़राबी नहीं। बल्कि बेशर्म भारत सरकार ने 2023 के संसद के मानसून सत्र में पुराने बनाए क़ानून – भारतीय ड्रग और कॉस्मेटिक क़ानून – में संशोधन करके वे दो धाराएँ ही बदल दीं, जिनके तहत नक़ली दवाओं के दोषी को जेल हो सकती थी। नए क़ानून के मुताबिक़ दोषी सिर्फ़ कुछ हज़ार रुपए देकर जेल से बच सकता है। वैसे तो पुराने क़ानून के तहत जेल भी मामूली थी, पर नए क़ानून से व्यापार करने की छूट के नाम पर ऐसे मगरमच्छों को उससे भी छुटकारा दे दिया गया है।

विश्व स्तर पर हालत

ऐसा नहीं है कि सिर्फ़ भारत में ही मरीजों के स्वास्थ्य के साथ खिलवाड़ होता है। तीसरी दुनिया के अनेकों देशों से लेकर विकसित पूँजीवादी देशों तक दवा उद्योग का तेंदुआ जाल मरीजों की जान के लिए ख़तरा बना हुआ है। हाल ही में अमेरिका की एक कंपनी पर्ड्यू फ़ार्मा एलपी का मामला सामने आया, जो ओपिओइड दवा बनाती थी। ओपिओइड दर्द से आराम देने वाली दवाओं के समूह को कहा जाता है, जिन्हें अंग्रेज़ी में 'पेनकिलर्स' भी कहा जाता है। ये दवाएँ हेरोइन जैसे नशीले पदार्थों से बनती हैं, जिसके कारण इनकी लत लगने की संभावना होती है। इस कंपनी ने अपने प्रचार द्वारा इस झूठ का प्रचार किया कि उसके द्वारा बनाई जा रही ओपिओइड दवा सुरक्षित है और इसकी लत नहीं लगती, जबकि लैब में इस बात की कोई पुष्टि नहीं हुई थी। अकादमिक कार्यक्रमों और बड़े स्तर पर डॉक्टरों तक पहुँच करके उन्हें ज़्यादा से ज़्यादा मात्रा में लोगों को यह दवा देने के लिए मनाया गया (डॉक्टरों को भारी नगदी, तोहफ़े देना और बड़े-बड़े हॉटेलों में पार्टियाँ देना – मनाने के आम ढंग हैं)। नतीजा यह निकला कि जहाँ 1997 में 6,70,000 लोगों को डॉक्टरों द्वारा यह दवा लेने की हिदायत दी गई, वहीं 2002 में यह संख्या 62,00,000 और 2012 में 25.5 करोड़ तक पहुँच गई। जब इस दवा की माँग इतनी बढ़ गई तो अन्य कंपनियाँ भी बड़े स्तर पर यह दवा बनाने लगीं। थोड़े सालों में ही लोगों को इस दवा की इतनी लत लग गई कि इस लत को 'ओपिओइड महामारी' के नाम से जाना जाने लगा। 1996 से 2016 तक 4,53,300 लोगों की मौत सिर्फ़ इस दवा के ओवरडोस या लत की वजह से हुई। यह कंपनी कितने ही लोगों की मौतों के लिए और अनगिनत लोगों की ज़िंदगियों के साथ खिलवाड़ करने की दोषी है। इसके बावजूद अमेरिकी सरकार द्वारा इस कातिल मालिक पर कोई कार्रवाई नहीं की गई, उसे कोई सज़ा नहीं हुई, बल्कि जुर्माना भरवाकर उसे छोड़ दिया।

इसका हल क्या है?

साफ़ है कि दवाओं का यह सारा खेल मुनाफ़े पर टिका हुआ है। ज़्यादा से ज़्यादा मुनाफ़ा कमाने के चक्कर में दवाओं की गुणवत्ता के साथ समझौता किया जाता है। मानकों को नीचे लाया जाता है। तय मानकों के अनुसार भी काम नहीं किया जाता। एक तो भारत की बीमार सरकारी स्वास्थ्य व्यवस्था पहले ही आम लोगों की ज़रूरतें पूरी नहीं कर रही, दूसरा इन नक़ली और घटिया दवाओं के व्यापार ने उसे बिल्कुल अपाहिज बना दिया है। भारत ही नहीं बल्कि पूरी दुनिया की आम मेहनतकश आबादी को इस सब का नुक़सान झेलना पड़ रहा है। एक तो पहले ही मेहनतकशों को स्वास्थ्य सुविधाएँ नहीं मिलतीं, ऊपर से अगर अपनी दिन-रात की ख़ून-पसीने की कमाई से इलाज के नाम पर दवा ख़रीदनी पड़े, तो उसे मिलता है दवा के रूप में ज़हर। मतलब ग़रीब मज़दूर पर कई तरफ़ से मार पड़ रही है। उसे मेहनत की लूट का शिकार होना पड़ता है, काम के बोझ और ग़रीबी के चलते स्वास्थ्य गिरता जाता है, और फिर मेहनत के पैसे से इलाज के लिए दवा ख़रीदने पर मिलती हैं ज़हरीली-नक़ली दवाएँ।

दवा कारोबार में इस जानलेवा धोखाधड़ी का सीधा संबंध इससे होने वाले अथाह मुनाफ़े से है। जब तक मुनाफ़े पर टिकी मौजूदा व्यवस्था रहेगी, तब तक लोगों का स्वास्थ्य भी मुनाफ़ाखोर पूँजीपतियों के क़ब्ज़े में रहेगा। सभी स्वास्थ्य सुविधाओं समेत दवाइयों के निजी कारोबार को पूरी तरह बंद करके इसे सरकारी कंट्रोल में लाना चाहिए, ताकि स्वास्थ्य सेवाओं का काम मुनाफ़ा कमाने का धंधा ना बने। इसलिए लोगों के स्वास्थ्य के साथ खिलवाड़ को रोकने के लिए इस पूरी पूँजीवादी व्यवस्था को ख़त्म करके समाजवादी व्यवस्था बनाने की ज़रूरत है, क्योंकि समाजवादी व्यवस्था में ही दवाओं के साथ सभी स्वास्थ्य सुविधाओं में निजी मुनाफ़ाखोरी को ख़त्म करके इसे लोगों की सेवा का साधन बनाया जा सकता है।

– मानव

कमरतोड़ महँगाई से पिस रही यूरोप की जनता

लाखों सालों के मानव विकास के बाद आज तकनीक के क्षेत्र में तथाकथित 'बनावटी चेतना' की बात हो रही है यानी अपार तरक़्क़ी की बातें हो रही हैं। लेकिन विज्ञान की इस अपार तरक़्क़ी के बावजूद मेहनतकश जनता आज भी बुनियादी ज़रूरतों के लिए जद्दोजहद करने को मजबूर है। ऐसी ही एक लड़ाई है खाद्य सुरक्षा के लिए, यानी भरपेट पौष्टिक भोजन के लिए। पहले के समाजों में अक्सर अकाल पड़ते थे, अनाज की कमी होती थी, लेकिन आज दुनिया-भर में अनाज की बहुतायत है। लेकिन इसके बावजूद भी धरती पर करोड़ों लोगों को अच्छा भोजन नहीं मिल पाता। हम अक्सर एशिया और अफ़्रीका के देशों में लाखों लोगों के भूखे पेट सोने की कहानियाँ सुनते रहे हैं। लेकिन आज हम धरती के उस हिस्से में भोजन की कमी के बारे में बात करेंगे, जो अपनी तरक़्क़ी और ख़ुशहाली के लिए जाना जाता है यानी यूरोपीय महाद्वीप की।

पिछले साल 2023 में यूरोप की सड़कें प्रदर्शनकारियों से पटी पड़ी रही हैं, क्योंकि आर्थिक मंदी के कारण लोगों के जीवन में बड़ी गिरावट आई है। मौजूदा समय में, बढ़ती क़ीमतों ने लगभग एक तिहाई यूरोपीय लोगों को ग़रीबी में धकेल दिया है। एक सर्वेक्षण के अनुसार, पिछले तीन सालों में यूरोपीय लोगों की ख़रीद शक्ति में गिरावट आई है, जिससे ज़्यादातर लोगों को एक या दो समय का भोजन छोड़ने के लिए मजबूर होना पड़ा है। पिछले तीन सालों में आधे से ज़्यादा यूरोपीय लोगों ने अपने ख़र्च में कटौती की है। दो में से एक यूरोपीय निवासी सोचता है कि महँगाई और कम वेतन के चलते वह अगले महीने ग़रीबी में धँस जाएगा।

आज यूरोप में केवल 15% लोग ही आर्थिक रूप से सुरक्षित महसूस करते हैं। एक अन्य सर्वे के अनुसार, पिछले छह महीनों में 29% यूरोपीय लोगों ने अपना सफ़र करना कम किया है, 23% ने ठंड के बावजूद घर का हीटर चालू नहीं किया है, 30% ने परिवार के सदस्यों या दोस्तों से पैसे लेना या देना शुरू कर दिया है, 21% ने सेहत समस्याएँ होने पर भी इलाज नहीं करवाया, 18% ने भूख लगने के बावजूद एक समय का भोजन छोड़ दिया, 11% ने दान किया हुआ भोजन या कपड़े लिए और 10% ने अपने दोस्तों या परिवार के घर को बसेरे के रूप में इस्तेमाल किया, क्योंकि उनके पास रहने की जगह के लिए पैसे नहीं थे। हर क्षेत्र में महँगाई ने लोगों को मुश्किल चुनाव करने पर मजबूर कर दिया है कि किस बुनियादी ज़रूरत पर ख़र्च किया जाए और किस पर ख़र्च नहीं किया जाए।

2022 के बाद से ही महँगाई ने यूरोपीय लोगों के लिए जीवन कठिन बना दिया है। खाने-पीने की चीज़ों के दाम बढ़ने से लोगों को सबसे ज़्यादा परेशानी उठानी पड़ रही है। सर्वे के मुताबिक़, 38 फ़ीसदी लोग अब दिन में तीन बार खाना नहीं खा पाते हैं। बता दें कि पिछले साल भोजन पदार्थों की बढ़ी क़ीमतों ने चार दशक का रिकॉर्ड तोड़ दिया था। मार्च 2023 में यूरोप में भोजन पदार्थों की महँगाई 19.2% के शिखर पर पहुँच गई। 37 यूरोपीय देशों में से 33 में भोजन पदार्थों की महँगाई कुल महँगाई से ज़्यादा थी। तुर्की में यह दर 72.5% के चिंताजनक स्तर पर पहुँच चुकी है। एक समय का भोजन छोड़ने के अलावा, भोजन की गुणवत्ता में भी भारी गिरावट आई है। ज़ाहिर है इन सबका सबसे बुरा असर बच्चों पर पड़ा है। यूरोप के एक चौथाई बच्चों पर आज भयानक ग़रीबी में धकेले जाने का ख़तरा है। ये हालात लाज़मी तौर पर उनके सेहतमंद विकास को प्रभावित कर रहे हैं।

आँकड़ों को इतना विस्तार देने का उद्देश्य यह बताना है कि सबसे ख़ुशहाल माने जाने वाले महाद्वीप पर भी आज कामकाजी लोगों को बुनियादी ज़रूरतों के लिए भी संघर्ष करना पड़ रहा है। ऊपर दिए गए आँकड़े यह स्पष्ट करते हैं कि यूरोप एक गहरी मंदी के क़गार पर है, जिसका बुरा असर लोगों के बिगड़ते हालातों में दिखाई देने लगा है। यह वही यूरोप है, जिसके गुण पूँजीवादी अर्थशास्त्री गाते थे कि यूरोप पूँजीवाद का स्वर्ग है। लेकिन ऐसे हालातों ने यह स्पष्ट कर दिया है कि पूँजीवाद केवल कुछ अमीर लोगों के लिए स्वर्ग बना सकता है, वह भी आम बहुसंख्यक लोगों के जीवन को नरक बनाकर। लोगों की असल बेहतरी तो केवल समाजवाद में ही हो सकती है, जहाँ पैदावार लोगों की ज़रूरतों के लिए हो ना कि मुनाफ़े के लिए।

ऐसे मुश्किल हालातों का सामना कर रहे यूरोप के लोग चुप नहीं हैं। उन्होंने अपने हालात बदलने के लिए बड़े संघर्ष शुरू कर दिए हैं। डाक विभाग, रेलवे विभाग और दूसरे कई क्षेत्रों के लाखों कर्मचारियों ने बड़े पैमाने पर हड़तालों, धरनों, प्रदर्शनों के माध्यम से सरकारों की जनविरोधी नीतियों का विरोध करना शुरू कर दिया है। ज़रूरत है कि बुनियादी ज़रूरतों से उपजी इन लड़ाइयों को एक बड़े क्रांतिकारी आंदोलन में तब्दील करके इस जनविरोधी व्यवस्था को बदल देने की।

– जोबन

भारत में औरतों के विरुद्ध अपराधों में बेहिसाब बढ़ोतरी!

भारतीय समाज औरतों के लिए एक बर्बर समाज है। यहाँ क़ानूनी तौर पर चाहे औरतों को कई अधिकार प्राप्त हैं, लेकिन असल में उनकी स्थिति दोयम दर्जे के नागरिक और इंसान वाली है। घर से शुरू होकर शिक्षा, नौकरी और समाज के हर हिस्से में उन्हें शारीरिक और मानसिक हिंसा का शिकार होना पड़ता है। कभी यहाँ उन्हें अपनी मर्जी का जीवन साथी चुनने के लिए इज़्ज़त के नाम पर क़त्ल कर दिया जाता है तो कभी दहेज के नाम पर ज़िंदा जला दिया जाता है। हर रोज़ अख़बार औरतों के साथ क्रूर बलात्कार की ख़बरों से भरे रहते हैं। ऐसे माहौल में औरतों को भयानक मानसिक तनाव में अपना जीवन गुज़ारना पड़ता है।

कुछ दिनों पहले ही भारत सरकार द्वारा जारी की गई राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो की एक रिपोर्ट के अनुसार, वर्ष 2022 में औरतों के ख़िलाफ़ कुल 4.45 लाख मामले दर्ज किए गए, जो वर्ष 2021 और 2020 से अधिक हैं। इन अपराधों की सूची में पति या रिश्तेदारों द्वारा की गई हिंसा से लेकर बलात्कार, छेड़छाड़, अपहरण जैसे अपराध शामिल हैं। ये ही वो अपराध हैं, जो भारत की निकम्मी पुलिस और न्याय व्यवस्था में दर्ज किए गए हैं, औरतों के ख़िलाफ़ होने वाले ज़्यादातर अपराध समाज के सामने भी नहीं आते। ये आँकड़े मानवता को शर्मसार करते हैं, लेकिन देश के हुक्मरान और नौकरशाही बड़ी बेशर्मी के साथ इन तथ्यों से भी मुँह चुराने के लिए रोज़ नए-नए बहाने गढ़ने में माहिर हैं। राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो का कहना है कि इन आँकड़ों में वृद्धि का मतलब यह नहीं है कि औरतों के ख़िलाफ़ होने वाले अपराधों की संख्या में वृद्धि हुई है, बल्कि देश में अपराध को दर्ज करने वाली प्रणाली में सुधार के कारण इन आँकड़ों में वृद्धि हुई है। ऐसी घटिया न्याय व्यवस्था से महिलाएँ कैसे अपनी सुरक्षा और इंसाफ़ की उम्मीद कर सकती हैं।

इस रिपोर्ट के मुताबिक़, देश में औरतों के रहने के लिए सबसे भयानक स्थिति उत्तर प्रदेश की है। यहाँ साल 2022 में महिलाओं के ख़िलाफ़ होने वाले जुर्मों के 65,743 मामले दर्ज किए गए थे। इसके बाद महाराष्ट्र में 45,331, राजस्थान में 45,058, पश्चिम बंगाल में 34,731 और मध्य प्रदेश में 32,765 इस सूची में शामिल हैं। देश की राजधानी दिल्ली में औरतों के ख़िलाफ़ होने वाले अपराधों की संख्या राष्ट्रीय औसत से कहीं ज़्यादा है। साल 2022 में ही दिल्ली में औरतों के ख़िलाफ़ विभिन्न अपराधों के 14,247 मामले दर्ज किए गए। ऐसे मामलों में दिल्ली का औसत 144.4 है, जो राष्ट्रीय औसत 66.4 से काफ़ी ज़्यादा है। सिर्फ़ 2022 में ही दिल्ली में 1204 बलात्कार के मामले दर्ज हुए, जो देश में कुल बलात्कार से संबंधित मामलों का 31% है! देश की राजधानी का आलम यह है कि यहाँ हर दिन 3 महिलाएँ बलात्कार का शिकार होती हैं। इसके बाद देश की आर्थिक राजधानी कहे जाने वाले शहर मुंबई के तथ्य भी मानवता को शर्मसार करने वाले हैं। इस शहर में महिलाओं के विरुद्ध हिंसा की 6176 घटनाएँ हुईं। इस रिपोर्ट में सिर्फ़ उन मामलों का ज़िक्र है जो आधिकारिक तौर पर दर्ज होने के रूप में हमारे सामने आए हैं। भारत में महिलाओं के ख़िलाफ़ होने वाली ज़्यादातर ज्यादतियाँ छिपी ही रहती हैं। इन अपराधों को करने वाले कुछ ही अपराधियों को क़ानून द्वारा दंडित किया जाता है। बाक़ी मामले सालों-साल अदालतों में लटके रहते हैं। यहाँ याद रखने वाली एक और बात यह है कि इन आँकड़ों में वैवाहिक बलात्कार के आँकड़े शामिल नहीं हैं। भारतीय क़ानून वैवाहिक बलात्कार को अपराध मानने से इनकार करता है। संविधान का अनुच्छेद 375 वैवाहिक बलात्कार को वैधानिक अपराध की श्रेणी से बाहर रखता है। एक सरकारी विभाग द्वारा किए गए सर्वेक्षण के मुताबिक़, शारीरिक शोषण की शिकार 18-49 साल की 83 फ़ीसदी औरतें इसके लिए अपने मौजूदा पति को दोषी मानती हैं।

भारतीय समाज में औरत विरोधी मानसिकता गहरी जड़ें जमा चुकी है। इस देश में अभी भी पिछड़े सामंती मूल्यों का वर्चस्व

(अगले पन्ने पर जारी)

(पिछले पन्ने से आगे)

कायम है। आज भी भारत में अधिकतर महिलाओं को अपना पूरा जीवन बहुत ही संकीर्ण दायरे में गुज़ारना पड़ता है। अपनी मर्जी से प्रेम करने और जीवनसाथी चुनने से लेकर आज़ादी से घर से बाहर निकलने, अपनी इच्छा के मुताबिक़ कपड़े पहनने, नौकरी करने जैसे मामूली अधिकारों के लिए भी संघर्ष करना पड़ता है। महिलाओं को शादी से पहले अपने पिता और फिर अपने पति की इच्छा के अनुसार जीना पड़ता है। शादी के बाद महिलाओं पर हिंसा को इस समाज में मान्यता प्राप्त है। हर साल लगभग 5 लाख लड़कियों की गर्भ में ही हत्या कर दी जाती है। सम्मान के लिए हत्या की शिकार भी ज़्यादातर महिलाएँ होती हैं। औपनिवेशिक ग़ुलामी के कारण स्वस्थ पूँजीवादी विकास ना होने के कारण भारतीय समाज आज इन मध्ययुगीन लक्षणों से पीड़ित है।

इसके साथ ही मौजूदा पूँजीवादी व्यवस्था की बुराइयों का भी एक अजीब मिश्रण बन गया है। पूँजीवाद के आगमन के साथ महिलाओं की ग़ुलामी का स्वरूप भी बदल जाता है। निस्संदेह, कुछ हद तक व्यक्तिगत स्वतंत्रता के थोड़े अधिकार भी मिले हैं। इस सामाजिक व्यवस्था में महिलाओं के शरीर को एक वस्तु के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। नारी के अस्तित्व को केवल पुरुषों के भोग की वस्तु तक सीमित कर देना पूँजीवादी संस्कृति का लक्षण है। विभिन्न प्रकार की बाज़ार की वस्तुएँ बेचने के लिए महिलाओं के शरीर का सहारा लिया जाता है। फ़िल्मों, गानों आदि में महिलाओं को एक इंसान के रूप में नहीं, बल्कि केवल आनंद लेने योग्य एक ख़ूबसूरत शरीर के रूप में दिखाया जाता है। इसके अलावा पोर्नोग्राफ़ी पूँजीवादी संस्कृति का सबसे घिनौना रूप है। ये फ़िल्में महिलाओं के विरुद्ध शारीरिक हिंसा और बलात्कार को जायज़ बनाकर पेश करती हैं। इसके अलावा, यह यौन क्रिया को इंसानों के रिश्तों के केंद्र और एकमात्र वजह के रूप में स्थापित करती हैं और औरत-मर्द के रिश्ते में मानवीय पक्ष को खारिज़ करके पशुओं जैसे संबंध के रूप में दिखाती हैं। भारत में सरकार द्वारा पोर्नोग्राफ़ी पर प्रतिबंध है, लेकिन इसके बावजूद छोटे बच्चों तक भी पोर्न की पहुँच है। इन सभी कारणों से महिलाओं के ख़िलाफ़ अपराधों को और अधिक बढ़ावा मिलता है। महिलाओं के विरुद्ध होने वाले अपराधों को रोकने और दोषियों को कड़ी सज़ा दिलाने के लिए जनसंघर्षों के द्वारा सरकार और न्याय व्यवस्था पर दबाव बनाना चाहिए। जनसंघर्षों में शामिल होकर ही महिलाओं को सामाजिक स्तर पर मानवीय गरिमा से भरपूर ज़िंदगी मिल सकती है। इसके साथ ही सामंती और पूँजीवादी स्त्री विरोधी मूल्यों की जकड़न को तोड़ने के लिए सांस्कृतिक और वैचारिक स्तर पर तीखे संघर्ष की ज़रूरत है।

– गुरप्रीत अमृतसरी

एनिमल – आर.एस.एस.-भाजपा के नाज़ी एजेंडे को स्थापित करती एक ख़तरनाक फ़िल्म

इन दिनों संदीप रेड्डी वांगा द्वारा निर्देशित फ़िल्म 'एनिमल' पूरे भारत और ख़ासतौर पर पंजाब में काफ़ी चर्चा में रही है। इसमें रणबीर कपूर ने नायक की भूमिका निभाई है। फ़िल्म में दिखाई गई हिंसा और 'अल्फ़ा मेल' जैसे विषयों के कारण शोभा डे जैसे कई समीक्षकों ने जहाँ इसे औरत विरोधी घोषित किया है, वहीं पंजाब के सिख भाईचारे के एक हिस्से द्वारा इसका स्वागत इसलिए किया गया है, क्योंकि इसमें सरदारों की पेशकारी अन्य हिंदी फ़िल्मों जैसी घिसी-पिटी नहीं है। लेकिन फ़िल्म का थोड़ा गंभीरता से अध्ययन यह दर्शाता है कि कैसे यह फ़िल्म मौजूदा राजनीतिक और आर्थिक हालातों में आर.एस.एस.-भाजपा का हिटलरशाही नाज़ी एजेंडा दर्शकों को परोसती है।

कला का कोई भी नमूना अपनी मौजूदा सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक हालातों से अलग नहीं होता। कला के उच्चतम रूपों में से एक सिनेमा, मनोरंजन के साधन से बढ़कर विचारों की लड़ाई में इस्तेमाल किया जाने वाला सबसे ताक़तवर हथियार है। शासक वर्ग अपनी विचारधारा को लोगों तक पहुँचाने के लिए संचार के अन्य साधनों के साथ-साथ इस हथियार का भी इस्तेमाल करता है। सिनेमा मनुष्य के अवचेतन मन को सीधा चोट पहुँचाता है। अपनी राज्यसत्ता को कायम रखने के लिए शासक वर्ग को लोगों की सहमति की ज़रूरत होती है, जो वह कला और अन्य साधनों का इस्तेमाल करके हासिल करता है। फ़िल्म में फ़िल्मकार डायलॉग, दृश्यों और प्रतीकों आदि का सहारा लेकर अपने विचार दर्शकों तक पहुँचाता है। ये फ़िल्मकार अपनी रूढ़ीवादी विचारधारा लोगों पर थोपने के लिए फ़िल्म के रूप के पहलू पर ख़ास ध्यान देते हैं। तत्व में प्रतिक्रियावादी लेकिन रूप में उन्नत कलाकृति लोगों के दिलों पर ज़्यादा प्रभाव डालती है। बॉलीवुड की अन्य फ़िल्मों की तरह एनिमल फ़िल्म को भी हमें इसी चौखटे में रखकर समझना पड़ेगा। इस फ़िल्म का असली मक़सद सिखों की अलग पहचान को धुँधला करके उन्हें हिंदू धर्म का हिस्सा बताते हुए मुसलमानों को बेगाना घोषित करना है। भारत को एक शक्तिशाली राष्ट्र के तौर पर पेश करना है, जिसे अपने विरोधियों से अब बड़ा ख़तरा है।

सबसे पहले इस फ़िल्म की कहानी और इसके प्लॉट की संक्षेप में बात करते हैं। यह फ़िल्म एक बेटे का अपने पिता के लिए बेइंतेहा प्यार के विषय पर है। बेटे का अपने पिता के लिए प्यार एक रोग की हद तक चला जाता है। बेटे की परवरिश में पिता के प्यार की कमी के कारण उसके व्यक्तित्व में ख़तरनाक बदलाव आते हैं, जो उसके भविष्य के ज़िम्मेदार हैं। फ़िल्म में रणविजय (रणबीर कपूर) एक कामयाब बिज़नेसमैन बलबीर सिंह (अनिल कपूर) का बेटा है। बलबीर सिंह ने अपनी मेहनत से 'स्वास्तिक स्टील' नामक कंपनी खड़ी की है। बलबीर सिंह पर कुछ गुमनाम लोगों द्वारा गोलियाँ चलाई जाती हैं। यह सुनकर रणविजय अमेरिका से वापिस लौटता है और पिता पर हमले के ज़िम्मेदार व्यक्तियों को ढूँढ़ने की कोशिश करता है। इस दौरान रणविजय को पता चलता है कि असरार नामक व्यक्ति ने उसके पिता को मारने की योजना बनाई थी, जिसमें उसका जीजा भी शामिल था। इससे आगे रणविजय का दादा उसे बताता है कि असरार, अबरार और आबिद असल में रणविजय के दादा राजधीर और उसके भाई दलबीर के छोटे भाई शमशेर के पोते हैं। शमशेर को उसकी ग़लत आदतों के चलते परिवार में से निकाल दिया गया था। जिसके बाद उसने इस्लाम क़बूल कर लिया था। और अब उनकी ज़िंदगी का सिर्फ़ एक ही मक़सद है बलबीर सिंह द्वारा खड़ी की गई कंपनी 'स्वास्तिक स्टील' और उसके परिवार की बर्बादी।

अब लौटते हैं इस फ़िल्म की व्याख्या की तरफ़। ज़्यादातर फ़िल्म समीक्षकों ने एनिमल फ़िल्म को औरत विरोधी ऐलान करते हुए इसे हिंसा और ज़हरीली मर्द प्रधानता के विषय तक सीमित कर दिया है। परंतु फ़िल्म का असली संदेश फ़िल्म की कहानी के अंदर ही छुपा हुआ है, जो अप्रत्यक्ष रूप में हमारे अर्धचेतन मन को प्रभावित करता है। फ़िल्म के पर्दे पर आने से पहले ही इस फ़िल्म के हिटलर के नाज़ी एजेंडे की झलक इसकी आई दो फ़ोटो और ट्रेलर से मिल जाती है। इन फ़ोटो में दो इंसान, जिनमें एक सरदार भी है, स्वास्तिक के निशान के सामने नाज़ी अंदाज़ में बाज़ू को सामने की तरफ़ उठाकर सलाम करते हुए दिखाए गए हैं। फ़िल्म में बलबीर सिंह जिस कंपनी का मालिक है, उसका नाम भी 'स्वास्तिक स्टील कार्पोरेशन' है।

जब बलबीर सिंह के गोली लगती है, तो रणबीर कपूर 'स्वास्तिक स्टील' के मज़दूरों के बीच जाकर मज़दूरों वाली वर्दी पहनकर नाज़ी तरीक़े से स्वास्तिक के निशान के सामने बाज़ू सामने की तरफ़ उठाकर और मुठी बंद करके सौगंध लेता है कि स्वास्तिक स्टील के मालिक पर गोली चलाने वाले का गला काटकर मज़दूरों के सामने पेश करेगा। मज़दूर भी उसकी हाँ में हाँ मिलाते हैं। इसके बाद वह आपसी बातचीत में यह भी कहता है कि हमारा स्वास्तिक नाज़ी हिटलर वाला नहीं है। जैसे कि हमने ऊपर ज़िक्र किया कि कोई भी फ़िल्मकार अपने विचार लोगों तक पहुँचाने के लिए फ़िल्म की कहानी, डायलॉग, दृश्य और प्रतीकों का सहारा लेता है। इन प्रतीकों का इस्तेमाल ही उसके असली विचारों की पहचान करवाता है। यह स्वास्तिक स्टील असल में एक कंपनी की बजाए भारतीय हिंदू राष्ट्र की ही छवि है। इस राष्ट्र को बहुत ही मेहनत से खड़ा किया गया है और अब इसको बर्बाद करने के लिए दुश्मन खड़े हो गए हैं।

फ़िल्म की शुरुआत में यह दिखाया गया है कि रणविजय बचपन में अपने पिता के प्यार से वंचित रहता है। हिटलर के बारे में जो कहानी प्रसिद्ध है, उसमें भी उसे बचपन में अपने पिता का प्यार नहीं मिलता और वह अपने पिता के हाथों ज़ुल्म सहता है। यह कोई महज़ इत्तेफ़ाक नहीं, बल्कि सोच-समझकर दोनों के बचपन में समानताएँ दिखाई गई हैं। इसके बाद वह फ़िल्म की नायिका गीतांजलि की मंगनी में जाकर 'अल्फ़ा मेल' और 'ताक़तवर जीन' जैसे नाज़ीवादी विचारों की

(अगले पन्ने पर जारी)

(पिछले पन्ने से आगे)

बात करता है। हिटलर के शासन के दौरान जेनेटिक्स में सुजनन का सिद्धांत बड़े पैमाने पर प्रचलित हुआ था, जिसके अनुसार मनुष्य के गुणों को और सुधारने के लिए अच्छे गुणों वाले मनुष्यों के ही आपसी शारीरिक संबंध हों, ताकि कमजोर जीन मनुष्य के भावी विकास में बाधा ना बनें। इंसानियत विरोधी इस सिद्धांत ने लगभग 60 लाख यहूदियों का क़त्लेआम किया, जो मनुष्यों के इतिहास का सबसे बड़ा क़त्लेआम था।

बलबीर सिंह (अनिल कपूर) पर हमले के बाद रणविजय किसी पर भरोसा नहीं करता और परिवार की रक्षा के लिए गाँव में रहने वाले अपने सिख परिवार के पास मदद के लिए जाता है। यह परिवार पिछले 20 सालों से नाराज़ है। हक़ीक़त में फ़िल्म की कहानी में दिखाई गई नाराज़गी दो भाइयों के परिवारों में नहीं, बल्कि दो धार्मिक समुदायों में पिछले समय से आई दरार को प्रतिबिंबित करती है। साल 1947 और ख़ासतौर पर 1984 के बाद बढ़ी इस दरार के कारण सिख समुदाय के बीच एक अलगाव की भावना है। यह अलगाव पिछले समय में और भी बढ़ा है, जिसके पीछे मुख्य तौर पर आर्थिक और राजनीतिक कारण हैं। हिंदू और सिख दो धार्मिक समुदायों को भाई और एक पिता की औलाद दिखाकर इस दरार को कम करने की कोशिश की गई है। फ़िल्म का नायक रणविजय गाँव में रहने वाले अपने भाइयों को 'स्वास्तिक स्टील' और अपने परिवार की रक्षा करने के लिए मना लेता है। इस तरह यह फ़िल्म सिखों को देश के असली रक्षक के तौर पर पेश करती है, जो 'स्वास्तिक स्टील' नहीं बल्कि भारतीय राष्ट्रवाद या हिंदू राष्ट्रवाद की ही रक्षा है। सरकारी फ़ौज और पुलिस के बिना अपने ही लोगों की एक निजी अर्ध सैनिक फ़ौज तैयार करना फ़ाशीवाद का एक अभिन्न लक्षण होता है। निर्देशक इस बात पर ख़ास ध्यान देता है कि सिख और हिंदू की अलग पहचान को धुँधला किया जा सके, जिसके लिए वह दोनों समुदायों के धार्मिक प्रतीक (कड़ा, तिलक, किरपान) को संयुक्त तौर पर इस्तेमाल करता है। रणविजय का परिवार हिंदू है, परंतु उसके सदस्यों के नाम भी सिख भाईचारे के साथ मिलते-जुलते रखे गए हैं। जबकि पंजाब के गाँव वाला परिवार सिख है। अंतिम लड़ाई के दृश्य में सिखों के लिए पवित्र माने जाते 5 ककारों में से एक कड़े के साथ दुश्मन पर नायक वार करता है। फ़िल्म के आख़िर में जब रणविजय अबरार (बॉबी देओल) का गला काटता है, तो उसके हाथ में 'सिरी साहिब' (गात्रा) जैसा सिख समुदाए का पवित्र चिह्न होता है। जैसे शुरू में कहा गया है कि सिखों के एक हिस्से ने इसका स्वागत किया है कि यह सिखों के किरदार को पहले की हिंदी फ़िल्मों के मुक़ाबले बढ़िया ढंग से पेश करती है। परंतु हमारा यहाँ मानना है कि यह फ़िल्म सिख समुदाय को हिंदू राष्ट्रवाद के पीछे लगाने के बहुत ही ख़तरनाक रुझान की शुरुआत करती है।

इस फ़िल्म के कुछ दृश्य नारी विरोधी ज़रूर हैं, परंतु इन दृश्यों को फ़ाशीवादी राष्ट्रवाद के चौखटे के अंदर ही रखकर देखने की ज़रूरत है। फ़ाशीवाद बुनियादी तौर पर एक औरत विरोधी विचारधारा ही है। फ़िल्म का नायक रणविजय अबरार द्वारा भेजी गई ज़ोया नाम की ख़ुफ़िया एजेंट के साथ हमबिस्तर होता है। वह प्यार का स्वांग रचता है। इसके बाद वह अपनी पत्नी को कहता है कि मैंने यह सब अपने परिवार की जान बचाने के लिए ही किया है। अगर मैं इस तरह ना करता तो हमारे परिवार के सामने जो ख़तरा है, उसका पर्दाफ़ाश नहीं होता। असलीयत में इस डायलॉग के द्वारा निर्देशक ने यह बताने की कोशिश की है कि समय आने पर अपने देश और धर्म की ख़ातिर तुम दुश्मन समूह की औरतों के जिस्म का इस्तेमाल कर सकते हो। यह मौजूदा राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के राष्ट्रवाद के मुस्लिम औरतों के प्रति रवैया की ही रणनीति है। निर्देशक ने बहुत ही चालाकी के साथ रणविजय की बेवफ़ाई को जायज़ साबित किया है, परंतु जब अबरार (बॉबी देओल) अपनी ही तीसरी पत्नी के साथ शारीरिक संबंध बनाता है, तो उसे वहशियाना ढंग से पेश करके मुस्लिमों के अक्स को ख़राब करने की कोशिश की है। एक और दृश्य में जब रणबीर कपूर अबरार को मारने के लिए घर से जाता है, तो वह अपनी पत्नी को कहता है कि मेरे मरने के बाद दूसरी शादी मत करना। यह एक मर्द प्रधान समाज की औरत को निजी जायदाद समझने की सोच में से उपजी हुई भावना है।

अब प्रश्न यह उठता है कि अगर 'स्वास्तिक स्टील्स' हिंदू राष्ट्र का स्वरूप है, तो फिर यह लड़ाई है किसके ख़िलाफ़ और इसे ख़तरा किस दुश्मन से है। इस मोड़ पर आकर निर्देशक का फ़ाशीवादी रुख़ निकलकर सामने आता है। 'स्वास्तिक स्टील्स' की तबाही के रास्ते पर चल रहा और कोई नहीं बल्कि रणविजय के दादा राजधीर सिंह के छोटे भाई शमशेर सिंह का ही परिवार है, जो अब इस्लाम क़बूल कर चुका है। इसमें उसका अपना जीजा भी उनका साथ दे रहा है। शमशेर सिंह के भाई का परिवार यहाँ दो चीज़ों का स्वरूप है। एक भारत में रहने वाले मुस्लिम और दूसरा पाकिस्तान। संघ के एजेंडे के मुताबिक़ यहाँ के सभी निवासी पहले हिंदू ही थे। फिर कुछ लोगों ने इस्लाम क़बूल कर लिया। अब इन्हें एक अलग देश दिया जा चुका है। इन्हें चाहिए कि ये अब वहीं रहें। अगर भारत में रहना है, तो दूसरे दर्जे का नागरिक बनकर रहना पड़ेगा। रणविजय एक डायलॉग में कहता है कि 'हमने ग़द्दारों को दामाद बनाकर रखा हुआ है'। मुसलमानों की छवि बिगाड़ने के लिए इसमें उन्हें दरिंदे, कामी और तमाम मानवीय गुणों से रहित दिखाया गया है। इनकी ज़िंदगी का मक़सद सिर्फ़ और सिर्फ़ भारतीय राष्ट्र की बर्बादी है।

संघ और भाजपा की रणनीति के हिंदी, हिंदू, हिंदुस्तान के नारे को दक्षिण भारतीय राज्यों में कुछ ख़ास प्रतिक्रिया नहीं मिली। आर.एस.एस. लगातार दक्षिण भारत के लोगों में इस विचारधारा के प्रति प्यार जगाने की कोशिश करती रहती है। इस फ़िल्म में भी जिस हथियारों के दलाल को दिखाया गया है, वह तमिल है। वह कहता है कि इस मशीनगन को बनाने का विचार दिल्ली में पैदा हुआ, निर्माण इसका बेंगलुरु में और महाराष्ट्र में इसके अलग-अलग पुर्ज़ों को जोड़ा गया। फिर वह कहता है 'आत्मनिर्भर भारत'। इस तरह इस फ़िल्म को संघ द्वारा दक्षिण भारत में अपने पैर जमाने के हथकंडे के रूप में ही समझा जाना चाहिए।

फ़िल्म को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि इसमें संघ की पूरी विचारधारा और भारत में संघ की मौजूदा स्थिति का ही चित्रण हुआ है। 'द कश्मीर फ़ाइल्स', 'द केरला स्टोरी' और 'ग़दर 2' जैसी फ़िल्में जहाँ सीधे तौर पर भारतीय राष्ट्रवाद की सोच को पेश करते हुए मुस्लिम समुदाय के विरुद्ध नफ़रत का प्रचार करती है, वहीं एनिमल अप्रत्यक्ष तौर पर अवचेतन मन पर असर करती है। जब फ़ाशीवादी संगठन देश की सत्ता पर काबिज़ है, तो वह कला के उच्चतम रूप सिनेमा का इस्तेमाल बार-बार अपनी जड़ों को मज़बूत करने के लिए करेगा। इस कोशिश को हर बार बेनकाब करना हमारा फ़र्ज़ है।

– गुरमन

तानाशाही नहीं चलेगी!

(पन्ना 1 से आगे)

जा चुका है। कृषि क़ानूनों के ख़िलाफ़ संघर्ष में भी नीलम शामिल होती रही हैं।

सागर शर्मा एक लकड़ी के मिस्त्री के बेटे हैं। उन्हें घर की ग़रीबी के कारण पैसे ना होने के चलते बीच में ही स्कूल छोड़ना पड़ा था। वह अब लखनऊ में ऑटो रिक्शा चलाकर गुज़ारा करते हैं। मनोरंजन डी मैसूर शहर के रहने वाले हैं, इंजीनियर हैं। उनका परिवार ग़रीब किसान परिवार है। अमोल शिंदे महाराष्ट्र से एक ग़रीब दलित परिवार से हैं। अमोल जो फ़ौज में भर्ती होकर परिवार के लिए रोज़गार कमाने के लिए तैयारी कर रहे थे, लेकिन अग्निवीर स्कीम आने के कारण उनकी उम्र सीमा गुज़र गई और भर्ती सपना ही रह गई।

बताया जा रहा है कि सोशल मीडिया पर इन लोगों का आपस में संपर्क हुआ। वे अपना आक्रोश जाहिर करने के लिए तरीक़ों पर विचार-विमर्श करने लगे। फ़ैसला किया गया कि वे तथाकथिक लोकतंत्र के सबसे बड़े मंच संसद पर रोष प्रदर्शन करके जनअधिकारों की आवाज़ बुलंद करेंगे।

मोदी सरकार, तमाम पूँजीवादी विरोधी पार्टियों, पुलिस, अदालतों द्वारा द्वारा इन नौजवानों के रोष प्रदर्शन को "संसद की सुरक्षा के लिए ख़तरा", "आतंकवादी कार्रवाई" जैसा कुत्साप्रचार करने, उन्हें जेल में ठूँसे जाने, यू.ए.पी.ए. जैसे घोर दमनात्मक क़ानून के तहत धाराएँ मढ़े जाने और जमानतें देने से इनकार करने से यह एक बार फिर स्पष्ट हो गया है कि जिस तरह भारतीय उपमहाद्वीप पर नाजायज राज करते रहे अंग्रेज़ साम्राज्यवादी भारत की जनता के दुश्मन थे, वैसे ही आज के भारत में पूँजीवादी वर्ग की सभी राजनीतिक पार्टियाँ, इनकी सरकारें, यहाँ की पुलिस, अदालती व्यवस्था आदि सारी राज्य व्यवस्था भारत की जनता की कट्टर दुश्मन हैं। भारत में मौजूद लोकतंत्र शोषणकारियों के लिए लोकतंत्र है और मज़दूरों-मेहनतकशों के लिए लूटतंत्र है, दमनतंत्र है। जिस तरह बहरे अंग्रेज़ हुक्मरानों को सुनाने के लिए शहीद भगतसिंह और बी.के. दत्त द्वारा संसद में ग़ैर-जानलेवा बम धमाका करने पर उन्हें सज़ाएँ दी गए थीं, वही कुछ आज भी हो रहा है। लेकिन हुक्मरानों को जान लेना चाहिए कि वे जनता की हक़, सच, इंसाफ़ की आवाज़ हमेशा के लिए नहीं दबाकर रख पाएँगे। कहा जाता था कि अंग्रेज़ हुक्मरानों के राज में सूरज नहीं डूबता, कि उनका भारत से राज कभी ख़त्म नहीं किया जा सकता। लेकिन अंग्रेज़ हुक्मरानों की खूँखार दमन की नीति उसके राज को बचा नहीं पाई। जनता ने अंग्रेज़ हुक्मरानों को भारत से अपना राज समेटने पर मज़बूर कर दिया। मौजूदा लुटेरा राज, लुटेरी व्यवस्था भी अमर नहीं है। इसे भी मेहनतकश जनता एक दिन ज़रूर उखाड़ फेंकेगी। दमन का कोई भी रूप, अत्याचार की कोई भी इंतहा जनता की आवाज़ को दबा नहीं पाएगी।

पूरे पंजाब से आई आवाज़, फ़िलिस्तीन को करो आज़ाद!

पंजाब के जनवादपसंद विभिन्न राजनीतिक संगठनों ने नए साल के पहले दिन पूरे पंजाब में अलग-अलग जगहों पर फ़िलिस्तीन पर नाज़ायज इज़राइली हमले और बेगुनाह फ़िलिस्तीनियों के हो रहे क़त्लेआम के ख़िलाफ़ ज़ोरदार आवाज़ बुलंद करने का आह्वान किया गया था। इस आह्वान के तहत 1 जनवरी 2024 को पंजाब (चंडीगढ़ समेत) में ज़िला स्तरों और कुछ तहसील स्तरों पर रोष प्रदर्शन किए गए। लुधियाणा में 31 जनवरी 2023 को रोष प्रदर्शन किए गए।

ये रोष प्रदर्शन मुक्ति संग्राम मज़दूर मंच, सी.पी.आई. (एम.एल.)-न्यू डेमोक्रेसी, इंक़लाबी केंद्र पंजाब, आर.एम.पी.आई., सी.पी.आई., सी.पी.आई. (एम.एल.)-लिबरेशन और एम.सी.पी.आई. (यू) के आह्वान पर आयोजित किए गए थे, जिसमें अदारा ललकार ने भी बढ़-चढ़कर भागीदारी की। लोक मोर्चा पंजाब ने इस आह्वान के साथ तालमेल करते हुए 1 जनवरी को ही कुछ जगहों पर फ़िलिस्तीनियों के हक़ में आवाज़ बुलंद की।

इन रोष प्रदर्शनों को संबोधित करते हुए विभिन्न वक्ताओं ने कहा कि पिछले ढाई महीनों से फ़िलिस्तीनी लोगों का अपने ही देश से पूरी तरह सफाया करने के लिए हमले किए जा रहे है। गाज़ा में 21 हज़ार से अधिक लोग मारे जा चुके हैं, जिनमें 8 हज़ार से ज़्यादा बच्चे हैं। 55 हज़ार लोग जख्मी हैं। वक्ताओं ने कहा कि इज़राइल के प्रधानमंत्री बेंजामिन नेतनयाहू को जंगी अपराधी घोषित किया जाए। भारत के प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के इज़राइल के पक्ष में खड़े होने की सख़्त निंदा की गई और माँग की गई कि भारत सरकार अंतरराष्ट्रीय मंचों पर इज़राइल के ख़िलाफ़ सख़्त स्टैंड ले।

मुक्ति संग्राम मज़दूर मंच के वक्ता लखविंदर ने लुधियाणा में हुए प्रदर्शन को संबोधित करते हुए कहा कि अमेरिकी साम्राज्यवाद द्वारा शोषक इरादों के तहत फ़िलिस्तीनी क्षेत्र में इज़राइल नाम का नाजायज़ देश क़ायम करके फ़िलिस्तीनी राष्ट्रीयता का उजाड़ा गया है। पूरे फ़िलिस्तीन क्षेत्र का एक ही देश होना चाहिए, जहाँ विभिन्न धर्मों के लोग शांति से एक साथ मिलकर रहें। मुक्कमल आज़ादी के लिए फ़िलिस्तीन के लोग लगातार संघर्ष लड़ रहे हैं, लेकिन उनके राष्ट्रीय मुक्ति के संघर्ष को आतंकवाद कहकर बदनाम किया जा रहा है।

मुक्ति संग्राम मज़दूर मंच और अदारा ललकार द्वारा संयुक्त रूप से पर्चा प्रकाशित किया गया, जिसे लुधियाणा के विभिन्न इलाक़ों में बाँटा गया। अमृतसर में अदारा ललकार द्वारा पर्चा प्रकाशित किया गया।

अपनी असुरक्षा से

- अवतार 'पाश'

यदि देश की सुरक्षा यही होती है
कि बिना ज़मीर होना ज़िन्दगी के लिए शर्त बन जाये
आँख की पुतली में 'हाँ' के सिवाय कोई भी शब्द अश्लील हो
और मन बदकार पलों के सामने दण्डवत झुका रहे
तो हमें देश की सुरक्षा से ख़तरा है

हम तो देश को समझे थे घर-जैसी पवित्र चीज़
जिसमें उमस नहीं होती
आदमी बरसते मेंह की गूँज की तरह गलियों में बहता है
गेहूँ की बालियों की तरह खेतों में झूमता है
और आसमान की विशालता को अर्थ देता है
हम तो देश को समझे थे आलिंगन-जैसे एक एहसास का नाम
हम तो देश को समझते थे काम-जैसा कोई नशा
हम तो देश को समझे थे क़ुर्बानी-सी वफ़ा
लेकिन 'गर देश
आत्मा की बेगार का कोई कारखाना है
'गर देश उल्लू बनने की प्रयोगशाला है
तो हमें उससे ख़तरा है

'गर देश का अमन ऐसा होता है
कि कर्ज़ के पहाड़ों से फिसलते पत्थरों की तरह
टूटता रहे अस्तित्व हमारा
और तनख़्वाहों के मुँह पर थूकती रहे
कीमतों की बेशर्म हँसी
कि अपने रक्त में नहाना ही तीर्थ का पुण्य हो
तो हमें अमन से ख़तरा है

'गर देश की सुरक्षा ऐसी होती है
कि हर हड़ताल को कुचलकर अमन को रंग चढ़ेगा
कि वीरता बस सरहदों पर मरकर परवान चढ़ेगी
कला का फूल बस राजा की खिड़की में ही खिलेगा
अक़्ल, हुक़्म के कुएँ पर रहट की तरह ही धरती सींचेगी
मेहनत, राजमहलों के दर पर बुहारी ही बनेगी
तो हमें देश की सुरक्षा से ख़तरा है।

चिंगारी, जो ज्वाला बनेगी!

(21 जनवरी 2024 विश्व मज़दूर वर्ग के महान अध्यापक और नेता व्ला.ई. लेनिन की 100वीं बरसी है। उनकी याद में हम यहाँ ली. फ़ोतियेवा की किताब 'लेनिन के जीवन के चंद' का एक अंश प्रकाशित कर रहे हैं कि कैसे कामरेड लेनिन ने रूस में मज़दूर आंदोलन में अग्रणी भूमिका निभाने वाले मज़दूरों के क्रांतिकारी अखबार ईस्क्रा के प्रकाशन का काम शुरू किया।)

साइबेरिया की ख़ानों में
मान औ' धैर्य की ज़रूरत अपार,
व्यर्थ ना जाएँगे दुखद संघर्ष
और आपके उदात्त विचार।

ये पंक्तियाँ कवि पुश्किन ने नेरचिन्स्क, साइबेरिया, में निर्वासित और ख़ानों में काम करने को मजबूर दिसंबरवादियों को लिखी थीं। इसके उत्तर में कवि-दिसंबरवादी ओदोयेव्स्की ने उन्हें लिखा:

न होगा व्यर्थ हमारा संघर्ष अथक,
उठेगी कभी चिंगारी से लपट!

व्लादीमिर इल्यीच ने अख़बार का नाम 'ईस्क्रा' (चिंगारी) ही रखने का फ़ैसला किया।

शूशेन्स्कोये में रहते हुए ही उन्होंने उसकी पूरी योजना तैयार कर ली थी। अब उसे कार्यरूप देना था। साइबेरिया से लौटकर व्लादीमिर इल्यीच प्स्कोव में रहने लगे। अकेले ही। नदेज़्दा कोन्स्तान्तिनोव्ना की निर्वासन अवधि अभी ख़त्म नहीं हुई थी, इसलिए वह बाफ़ी समय के लिए उफ़ा में ही रुक गईं। व्लादीमिर इल्यीच को प्स्कोव में रहने की इजाज़त थी। वहाँ उन्होंने 'ईस्क्रा' निकालने के लिए तैयारियाँ शुरू कीं। वह विभिन्न शहरों की यात्रा करते। 'ईस्क्रा' में काम करने के लिए साथियों को ढूँढ़ते। अख़बार के लिए लेख लिखने वालों को ढूँढ़ना था। फिर ऐसे आदमियों की तलाश भी ज़रूरी थी, जो अख़बार का गुप्त रूप से वितरण करते। 'ईस्क्रा' को आम तरीक़े से दूकानों और स्टॉलों पर बेचा नहीं जा सकता था। और अगर कोई ऐसा करता, तो उसे तुरन्त जेल हो सकती थी। अख़बार निकालने के लिए पैसों की भी ज़रूरत थी।

ज़मीन-आसमान एक करके चार महीने में व्लादीमिर इल्यीच ने 'ईस्क्रा' की तैयारी पूरी कर ही ली।

पर एक सवाल अभी बाफ़ी था। अख़बार को छापा कहाँ जाए? रूस में रहते हुए भला कोई ज़ार के ख़िलाफ़, ज़मींदारों और उद्योगपतियों के ख़िलाफ़, पुलिस के अफ़सरों के ख़िलाफ़ अख़बार छापने के लिए तैयार होता?

व्लादीमिर इल्यीच को इस बारे में भी काफ़ी सोचना पड़ा।

उन्होंने साथियों से परामर्श किया। अंत में यह तय हुआ कि उसे विदेश में छापा जाए। बेशक वहाँ भी ऐसा अख़बार पूरी तरह से गुप्त रूप से ही निकाला जा सकता था। पर वहाँ रूसी पुलिस के भेदिए इतने अधिक नहीं थे।

व्लादीमिर इल्यीच ने जैसे-तैसे डॉक्टरी सर्टिफ़िकेट का इंतज़ाम किया और इलाज के बहाने विदेश रवाना हो गए। इससे पहले वह नदेज़्दा कोन्स्तान्तिनोव्ना से भी मिल आए, जिनका निर्वासन नौ महीने बाद ख़त्म होना था। अब वह वतन से दूर जा रहे थे। क्या बहुत अरसे के लिए? जैसे कि बाद में पता चला, बहुत अरसे के लिए।

...तंग सड़कों, नुकीली छतों वाले मकानों और प्रोटेस्टेंट गिरजों वाले जर्मन शहर लाइप्ज़िग में बहुत अधिक कल-कारख़ाने और उनसे भी अधिक छापेख़ाने और हर तरह की किताबों की दूकानें थीं। वहाँ कोई पैंतीस साल की उम्र का गेर्मन राऊ नाम का एक जर्मन रहता था। शहर के बाहर एक छोटे-से गाँव में उसका छापाख़ाना था। उसमें मशीन के नाम पर सिर्फ़ एक ही – हालाँकि काफ़ी बड़ी – छपाई मशीन थी और वह भी बहुत पुरानी। उस पर मज़दूरों का खेलकूद अख़बार, तरह-तरह के पोस्टर और पैंफ़लेट छापे जाते थे।

गेर्मन राऊ सामाजिक-जनवादी था। एक दिन लाइप्ज़िग के सामाजिक-जनवादियों ने उसे बताया कि रूस से एक मार्क्सवादी आया है। रूसी मार्क्सवादी अपना क्रांतिकारी अख़बार निकालना चाहते हैं और यह तय किया गया है कि उसका पहला अंक लाइप्ज़िग में छपे।

"रूसी साथियों की मदद करनी चाहिए," लाइप्ज़िग के सामाजिक-जनवादियों ने गेर्मन राऊ से कहा।

लाइप्ज़िग आने वाला रूसी मार्क्सवादी और कोई नहीं, व्लादीमिर इल्यीच ही थे। उन्होंने शहर के छोर पर एक कमरा किराए पर लिया। वह हमेशा मुँह अँधेरे ही उठ जाते थे, जब हर कहीं निस्स्तब्धता होती थी। यहाँ तक कि फ़ैक्टरियों के भोंपू भी नहीं बजते होते थे। कमरा बहुत ठंडा था। दिसंबर का महीना चल रहा था।

व्लादीमिर इल्यीच ने स्पिरिट के चूल्हे पर पानी उबाला, टिन के मग में चाय बनाकर गरम-गरम पी और हमेशा की तरह घर से निकल पड़े। जाना दूर था, गेर्मन राऊ के छापेख़ाने तक। यही कोई पाँच-छः किलोमीटर का रास्ता होगा। घोड़ाट्राम वहाँ नहीं जाती थी, इसलिए पैदल ही जाना होता था। रास्ते में पैदल या साइकिलों पर सवार मज़दूर और बाज़ार जाने वाले किसानों के ठेले मिलते थे। शहर की सीमा आ गई। आगे बर्फ़ से ढँके खेत थे। दूर, क्षितिज के पास जंगल का काला साया दिखाई दे रहा था। शहर के छोर पर बसी बस्तियों की बत्तियाँ जल रही थीं। गेर्मन राऊ के छापेख़ाने की खिड़की से लालटेन का उजाला दिखाई दे रहा था।

सारा छापाख़ाना एक बड़े-से कमरे में समाया हुआ था, जिसके आधे हिस्से में पुरानी छपाई मशीन खड़ी थी। कमरे में दो कंपोज़िंग बॉक्स भी थे। लोहे की अँगीठी में लकड़ियाँ जलते हुए चटक रही थीं। लपटें कँपकँपाती थीं, तो उनके साथ ही दीवारों पर पड़ने वाले साए भी काँप जाते थे।

"आज महत्त्वपूर्ण दिन है," गेर्मन राऊ ने जर्मन में व्लादीमिर इल्यीच से कहा।

व्लादीमिर इल्यीच ने सिर हिलाकर सहमति प्रकट की। सचमुच आज महत्त्वपूर्ण दिन था। अब तक तो तैयारियाँ ही होती रही थीं, पर आज...

कंपोज़िटर ने भारी ब्लॉक उठाकर मशीन पर चढ़ाया। गेर्मन राऊ ने हत्था घुमाया। मशीन घड़घड़ाई। सिलैंडर घूमने लगा और अख़बार का पन्ना मशीन से बाहर निकला। इस तरह 'ईस्क्रा' का पहला अंक छपकर तैयार हुआ।

व्लादीमिर इल्यीच ने एक अंक उठाया। इस घड़ी का वह कब से और कितनी बेसब्री से इंतज़ार कर रहे थे!

"अब हमारे पास अपना, मज़दूरों का क्रांतिकारी अख़बार है! उड़ चलो, हमारे अख़बार, वतन की तरफ़! करो पैदा जागृति और उभारो क्रांति के लिए!"

व्लादीमिर इल्यीच ने सबको सुनाते हुए अख़बार का नाम पढ़ा:

"ईस्क्रा"।

दायीं तरफ़ ऊपर कोने में छपा था:

"उठेगी कभी चिंगारी से लपट!"

लेनिन

मुसाफ़िर गाड़ी केनिग्सबर्ग जा रही थी। तीसरे दर्जे के डिब्बे में एक कोने में खिड़की के पास एक नौजवान बैठा था। वह म्यूनिख़ में सवार हुआ था और तब से सारे रास्ते-भर ऊँघता रहा था। उसके पैरों के पास एक काफ़ी बड़ा सूटकेस रखा था।

गाड़ी केनिग्सबर्ग पहुँच गई। यह पत्थर के क़िले, गिरजाघरों और लाल खपरैल की छतों वाला पुराना शहर था। बाल्टिक सागर के तट पर होने के कारण यहाँ बंदरगाह भी था, जिसमें दसियों जहाज़ खड़े थे। उनमें से एक का नाम था 'सेंट मार्गरीता'। म्यूनिख़ से आए जर्मन ने इधर-उधर ताका-झाँका और फिर बंदरगाह की ओर ना जाकर पास ही के एक बीयरख़ाने में घुस गया। बीयरख़ाने में भीड़ बहुत थी। चारों तरफ़ तंबाकू का भूरा, कड़वा धुआँ छाया हुआ था। जर्मन एक ख़ाली जगह पर बैठ गया और सूटकेस को उसने मेज़ के नीचे खिसका दिया। फिर बैरे से सॉसेज मँगाकर बीयर के साथ धीरे-धीरे खाने लगा। इतने धीरे-धीरे कि मानो उसके पास फ़ालतू वक़्त बहुत हो। या हो सकता है कि वह किसी का इंतज़ार कर रहा था? हाँ, उसे सचमुच 'सेंट मार्गरीता' के जहाज़ी का इंतज़ार था। उससे मिलने के लिए ही वह म्यूनिख़ से आया था, हालाँकि उसे पहले कभी नहीं देखा था। जब भी कोई नया आदमी बीयरख़ाने में आता,

(अगले पन्ने पर जारी)

(पिछले पन्ने से आगे)

म्यूनिख़ से आया हुआ जर्मन दायें हाथ से बालों को दायें कान की तरफ़ सहलाते हुए टकटकी लगाकर उसे देखता। इस तरफ़ किसी का ध्यान भी नहीं जा सकता था, क्योंकि बालों को सहलाना कोई अस्वाभाविक बात नहीं थी। मगर यह एक इशारा था।

आख़िरकार जहाज़ी आ ही गया। समुद्री हवा और धूप से उसका चेहरा ताँबई हो गया था। दरवाज़े पर खड़े-खड़े उसने सभी लोगों पर नज़र डाली और बालों को सहलाते हुए आदमी को देखकर सीधे उसकी तरफ़ बढ़ चला। मेज़ के पास बैठकर उसने पैर से सूटकेस को टटोला और बोला:

"उफ़्फ़, कितनी भयंकर हवा है!"

"अगर अपने रास्ते की तरफ़ है, तो कोई बात नहीं," म्यूनिख़ से आए जर्मन ने जवाब दिया।

"ठीक ही पहचाना, भैया, अपने ही रास्ते की तरफ़ है।"

यह पहचाना-वाक्य था। तुरंत ही दोनों के बीच आत्मीयता पैदा हो गई। दोनों का एक ही ध्येय था, जिसकी ख़ातिर वे यहाँ बीयरख़ाने में इकट्ठा हुए थे।

बातचीत जल्दी ही ख़त्म हो गई और दोनों बीयरख़ाने से बाहर निकल आए। अब सूटकेस जर्मन के हाथ में नहीं, बल्कि जहाज़ी के हाथ में था। किसी ने इस बदलाव पर ध्यान नहीं दिया। आख़िर किसी को इससे मतलब भी क्या था? दो साथी जा रहे हैं, बातें कर रहे हैं। चौराहे पर दोनों अलग हो गए। म्यूनिख़ से आया जर्मन स्टेशन की ओर चल पड़ा और सूटकेस 'सेंट मार्गरीता' पर बाल्टिक सागर से होते हुए स्वीडन की राजधानी स्टाकहोम की ओर।

रात में हवा बहुत तेज़ हो गई। लहरें आसमान छूने लगीं। तूफ़ान 'सेंट मार्गरीता' को कभी इधर तो कभी उधर फेंकने लगा। अँधेरा ऐसा था कि हाथ को हाथ नहीं सूझता था।

जहाज़ छः घंटे देर से स्टाकहोम पहुँचा। फ़िनिश जहाज़ 'सुओमी' शायद कभी का हेल्सिंगफ़ोर्स के लिए रवाना हो चुका होगा।

"समय पर नहीं पहुँच पाया", जहाज़ी को अफ़सोस हो रहा था।

अचानक उसे 'सुओमी' दिखाई दिया। वह स्टाकहोम के बंदरगाह में खड़ा भाप छोड़ रहा था। शायद तूफ़ान की वजह से उसे भी रुक जाना पड़ा था और अब लंगर उठाने की तैयारियाँ कर रहा था।

"आहिस्ता से आगे!" कप्तान ने आदेश दिया।

चक्कों के नीचे पानी खौलने लगा। जहाज़ चल पड़ा।

"वाइस-कप्तान साहब!" भारी सूटकेस को खींचते हुए जहाज़ी चिल्लाया, "केनिग्सबर्ग से आपकी चाची ने पार्सल भेजा है!"

दौड़ने की वजह से जहाज़ी हाँफ रहा था। सूटकेस बहुत भारी था। उसे लगा कि उसकी सारी कोशिश बेकार हो गई है, क्योंकि 'सुओमी' तट से हट चुका था।

लेकिन नहीं, कोशिश बेकार नहीं गई। चमत्कार-सा हुआ। कप्तान ने उसका चिल्लाना सुन लिया और...

"आहिस्ता से पीछे!" 'सुओमी' पर आदेश सुनाई दिया। "स्टाप!"

"वाइस-कप्तान साहब!" जहाज़ी पूरे ज़ोर से चिल्लाया, "आपकी चाची ने गरम स्वेटर भेजे हैं और नया सूट भी।"

घाट पर खड़े सभी लोग ठहाका लगाकर हँस पड़े। ना जाने क्यों, सभी ख़ुश थे कि 'सुओमी' पार्सल लेने के लिए वापस लौट आया है। वाइस-कप्तान ने सूटकेस लिया, हाथ हिलाकर जहाज़ी को धन्यवाद दिया और "पार्सल" को अपने केबिन में छिपा लिया

सूटकेस की यात्रा जारी रही।

जब जहाज़ हेल्सिंगफ़ोर्स पहुँचा, तो मूसलाधार बारिश हो रही थी। वाइस-कप्तान ने बरसाती पहनी और सूटकेस उठाकर तेज़ी से घोड़ाट्राम के स्टाप की ओर बढ़ चला। पानी इतना अधिक बरस रहा था कि जैसे बाढ़ ही आ गई हो। ओह, कहीं बक्से में पानी ना चला जाए! वाइस-कप्तान ने इधर-उधर झाँका, पर वह मज़दूर कहीं नहीं दिखाई दिया, जिससे उसे स्टाप पर मिलना था। जहाज़ कुछ घंटे देर से पहुँचा था। ऊपर से यह मूसलाधार बारिश! सड़कें सुनसान थीं। कहीं वह पीटर्सबर्ग का मज़दूर इंतज़ार करते-करते ऊब ना गया हो! क्या किया जाए? तभी घोड़ाट्राम आती दिखाई दी...पर वह मज़दूर उसमें भी नहीं था। अचानक वाइस-कप्तान ने देखा कि सामने के घर के फ़ाटक से एक आदमी बाहर निकल इधर-उधर देखते हुए उसकी ओर आ रहा है। यही वह मज़दूर था, जिससे उसे मिलना था।

"कैसी बदक़िस्मती है! खड़े-खड़े अकड़ गया हूँ," मज़दूर बड़बड़ाया।

"तूफ़ान के कारण देर हो गई। कब जाएँगे?"

"आज।"

"ठीक है। मैं अभी तार से सूचित कर दूँगा।"

मज़दूर ने सहमति में सिर हिलाया और सूटकेस उठाकर घोड़ाट्राम पर चढ़ गया।

कुछ घंटे बाद सूटकेस रेलगाड़ी से पीटर्सबर्ग जा रहा था।

गाड़ी ख़ाली पड़े वसंतकालीन खेतों, बारिश से भीगे गाँवों और निर्जन दाचों* की बग़ल से गुज़र रही थी। पीटर्सबर्ग का मज़दूर इन जगहों को भली-भाँति जानता था, इसलिए चुपचाप बैठा अख़बार पढ़ रहा था और बेलोओस्त्रोव स्टेशन की प्रतीक्षा कर रहा था।

बेलोओस्त्रोव से रूस की सीमा शुरू होती थी। वहाँ हमेशा कस्टम चेकिंग होती थी।

कस्टम का आदमी कंपार्टमेंट में आया।

"कृपया अपने सूटकेस दिखाइए।"

पीटर्सबर्ग के मज़दूर ने बिना कोई जल्दबाज़ी दिखाए अपना सूटकेस खोला।

एक जोड़ी कपड़े, पुराना चारख़ानेदार कंबल और मिठाई का डिब्बा। बस। कस्टम वाले ने सूटकेस के किनारे ठकठकाए, पर संदेहजनक कुछ भी ना मिला।

उसी दिन मज़दूर पीटर्सबर्ग में था और वसील्येव्स्की द्वीप पर एक पत्थर के मकान की सीढ़ियाँ चढ़ रहा था। दूसरी मंज़िल पर दरवाज़े पर ताँबे की प्लेट लगी थी: "दाँतों का डॉक्टर"।

आगंतुक ने घंटी बजाई। दो लंबी और एक छोटी। इसका मतलब था कि डरने की कोई बात नहीं, अपना ही आदमी आया है।

दाँतों के डॉक्टर ने दरवाज़ा खोला।

"आइए, आपका ही इंतज़ार था।"

क्रांतिकारी गुप्त मुलाक़ातों के लिए यहीं एकत्र हुआ करते थे।

डॉक्टर के कमरे में एक लड़की मज़दूर का इंतज़ार कर रही थी।

"लाइए," उसने कहा और मज़दूर के हाथ से सूटकेस ले लिया। बेचारे ने रास्ते में क्या-क्या नहीं झेला था! तूफ़ान, बारिश, कस्टम चेकिंग...

लड़की ने सूटकेस से चारख़ानेदार कंबल और दूसरी चीज़ें निकालीं। लेकिन यह क्या? आगंतुक ने सफ़ाई से सूटकेस का तला दबाया और वह ढक्कन की तरह खुल गया। सूटकेस में दो तले थे। निचले तले में कसकर तह किए हुए अख़बार रखे हुए थे। लड़की ने एक अख़बार उठाया। 'ईस्क्रा'!

अच्छा, तो यह है वह चीज़, जिसे केनिग्सबर्ग, स्टाकहोम, हेल्सिंगफ़ोर्स से होते हुए इतनी मेहनत और इतने गुप्त रूप से म्यूनिख़ से पीटर्सबर्ग पहुँचाया गया है!

लड़की सूटकेस से 'ईस्क्रा' निकालकर अपने टोप के डिब्बे में रखने लगी। जब सब अख़बार आ गए, तो उसने फ़ीते से डिब्बे को बाँध दिया और पीटर्सबर्ग के छोर पर सक्रिय मज़दूर मंडलियों को बाँटने चल पड़ी।

वह 'ईस्क्रा' की एजेंट थी। 'ईस्क्रा' के गुप्त एजेंट रूस के सभी बड़े शहरों में थे।

'ईस्क्रा' को गुप्त रूप से जहाज़ों से, रेलगाड़ियों से लाया जाता, सीमा के इस पार पहुँचाया जाता।

'ईस्क्रा' मज़दूरों और किसानों की आँखें खोलता, उन्हें दिखाता कि उनका वास्तविक जीवन क्या है।

'ईस्क्रा' उन्हें सिखाता: "ज़ारशाही के ख़िलाफ़ लड़ो! मालिकों के ख़िलाफ़ लड़ो!"

'ईस्क्रा' उन्हें पार्टी का निर्माण करने के लिए, क्रांति के लिए ललकारता।

शीघ्र ही रूस में 'ईस्क्रा' की प्रेरणा से एक शक्तिशाली मज़दूर आंदोलन शुरू हो गया।

इस विराट आंदोलन के नेता, मार्गदर्शक और 'ईस्क्रा' के मुख्य संपादक व्लादीमिर इल्यीच थे।

व्लादीमिर इल्यीच को रूस से मज़दूरों और 'ईस्क्रा' के एजेंटों से बड़ी संख्या में पत्र, लेख, आदि मिलते थे और लगभग सब कूट भाषा में लिखे होते थे। वह उन्हें 'ईस्क्रा' में छापते, मज़दूरों के पत्रों के जवाब देते, 'ईस्क्रा' के लिए लेख तैयार करते और साथ ही राजनीति और क्रांतिकारी संघर्ष के बारे में किताबें लिखते।

दिसंबर 1901 से व्लादीमिर इल्यीच अपने लेखों और किताबों को लेनिन नाम से छापने लगे।

यह महान नाम था, एक ऐसा नाम, जिससे शीघ्र ही सारी दुनिया परिचित होने वाली थी।

पहले समाजवादी राज्य

(पन्ना 14 से आगे)

स्तालिन के नेतृत्व में साम्राज्यवादी देशों को कभी भी मित्रों की श्रेणी में नहीं रखा गया था। 1953 में स्तालिन की मृत्यु के बाद ख्रुश्चेव पार्टी पर काबिज़ हुआ, जो एक संशोधनवादी था। जो तीन शांतियों का सिद्धांत लेकर आया था। इस पुस्तक के अंतिम भाग में लेखिका लिखतीं हैं कि समाजवादी देश पूँजीवादी देशों के साथ शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व के साथ अगले रास्ते के लिए तैयार था।

किताब के आख़िरी हिस्से में लेखिका ने वही लिखा है, जो उस वक़्त हो रहा था। पाठकों को ध्यान में रखते हुए कि 1953 में स्तालिन की मृत्यु के बाद 1956 में पूँजीवाद की फिर से बहाली का दौर शुरू हो चुका था, जिसका ज़िक्र चीन की कम्युनिस्ट पार्टी ने महान बहस में किया है।

अपनी कमियों, सीमाओं के बावजूद 166 पन्नों की यह किताब उस महान युग की कहानी बयान करती है, जो जोसेफ़ स्तालिन के ज़िक्र के बिना कभी पूरी नहीं हो सकती। आज भी एक नए समाज के निर्माण का प्रश्न हमारे सामने खड़ा है। इसलिए अतीत की क्रांतियों के बारे में, क्रांति के नेताओं के बारे में जानना एक महत्वपूर्ण कार्य बन जाता है। जिसमें यह पुस्तक विशेष भूमिका निभाती है।

– रविंदर कौर

रामदेव की काली कमाई के बारे में नए खुलासे

पहले 2011 में दिल्ली जंतर-मंतर पर केजरीवाल एंड कंपनी के साथ, भ्रष्टाचार/काले धन के लिए उछल-कूद मचाने वाले, फिर 2014 के चुनाव से पहले भाजपा की गोद में बैठकर मोदी द्वारा काला धन वापस लाने का दावा करने वाले योगगुरु/कारोबारी रामदेव की ख़ुद की काली कमाई के बारे में कुछ अहम खुलासे सामने आए हैं।

'रिपोर्टर्स कलेक्टिव' नामक संस्था ने पिछले महीने के अंत में एक रिपोर्ट प्रकाशित की है, जिसमें यह तथ्य सामने आया है कि धर्म, आयुर्वेद, स्वदेशी आदि के नाम पर अपना अरबों का कारोबार खड़ा करने वाले रामदेव ने हरियाणा में 'शेल' (फ़र्ज़ी) कंपनियों के ज़रिए कई एकड़ ज़मीन ख़रीदी और बेची है, जिसके लिए उसे इस इलाक़े में 'रियल एस्टेट' का बादशाह माना जाता है।

रिपोर्ट के मुताबिक़, रामदेव को रियल एस्टेट कारोबार का किंग बनाने में 'शेल' कंपनियों की बहुत बड़ी भूमिका है। 'शेल' कंपनियाँ ऐसी कंपनियाँ होती हैं, जो केवल काग़ज़ पर मौजूद होती हैं। यह नाम आपने पिछले दिनों अदाणी के बारे में हिंडनबर्ग खुलासे में सुना होगा। दरअसल, पूँजीपतियों द्वारा कर चोरी से बचने या तथाकथित काले धन को सफ़ेद करने के लिए ऐसी कंपनियाँ बनाई जाती हैं, जो केवल काग़ज़ों पर ही होती हैं। इन कंपनियों को बनाने का फ़ायदा यह है कि पैसा बैंक के माध्यम से ट्रांसफ़र हो जाता है, लेकिन यह पता नहीं चलता कि पैसे का असली मालिक कौन है। इससे निवेशक क़ानूनी तौर पर यह बताने से बच जाते हैं कि उन्होंने पैसा कहाँ से कमाया है और कहाँ ख़र्च कर रहे हैं। इसका मतलब यह है कि ये कंपनियाँ काले धन को बनाने और बचाने का एक तरीक़ा हैं, जिसके बारे में आपने अक्सर टीवी पर रामदेव को बोलते हुए सुना होगा। उपरोक्त रिपोर्ट के अनुसार, ऐसी कई फ़र्ज़ी ('शेल') कंपनियाँ पतंजलि समूह से जुड़ी हुई हैं, जिसका मालिक रामदेव है।

रिपोर्टर्स कलेक्टिव की पड़ताल में पता चला है कि पतंजलि ग्रुप से जुड़ी सभी फ़र्ज़ी कंपनियाँ काग़ज़ों पर जो कारोबार करने का दावा करती हैं, हक़ीक़त में वे ऐसा कोई काम नहीं कर रही हैं। इन कंपनियों में पैसा यह छिपाने के लिए निवेश किया जाता है कि पैसा किसे मिल रहा है। इस पैसे से इन शेल कंपनियों ने दिल्ली के फेफड़ों का काम करने वाले हरियाणा के अरावली माँगर इलाक़े में कई एकड़ ज़मीन ख़रीदी। इन ज़मीनों को बाद में बेचा गया। बिक्री के बाद प्राप्त धन को अन्य शेल कंपनियों में निवेश किया गया और फिर अरावली के इलाक़े में ज़मीन ख़रीदने और बेचने का काम किया गया। रामदेव इन फ़र्ज़ी कंपनियों के संस्थापक सदस्यों में से एक है और इन कंपनियों का 'ब्रांड प्रमोटर' भी है।

रामदेव की उपरोक्त फ़र्ज़ी कंपनियों के गोरखधंधे से एक और पहलू जुड़ा है, वह है पर्यावरण। माँगर दिल्ली से सटा हुआ एक इलाक़ा है, जो हरियाणा के फ़रीदाबाद ज़िले में पड़ता है। यह इलाक़ा जंगलों से भरा हुआ है और अरावली पहाड़ियों का एक हिस्सा है। इसीलिए इसे दिल्ली के फेफड़े कहा जाता है। जंगली पहाड़ी इलाक़ा होने के बावजूद इसे क़ानूनी तौर पर जंगली इलाक़ा घोषित नहीं किया गया है। कहा जाता है कि अगर ईमानदारी से नियम बनाए गए होते, तो अब तक इस इलाक़े को जंगल का दर्जा मिल गया होता। लेकिन चूँकि यह इलाक़ा राजधानी से सटा हुआ है, इसलिए मुनाफ़े के भूखे रियल एस्टेट कारोबारियों के लिए यह नोट छापने की मशीन भी है, क्योंकि यहाँ की ज़मीनें बहुत महँगी हैं। यही कारण है कि दिल्ली में प्रदूषण की स्थिति इतनी भयावह होने के बावजूद पूँजीपतियों को मुनाफ़ा कमाने के लिए इन फेफड़ों को ख़त्म करने की छूट दे दी गई है। बल्कि इसके विपरीत, अगस्त 2023 में मोदी सरकार द्वारा पर्यावरण क़ानून में किए गए संशोधनों के ज़रिए, ऐसे इलाक़ों को, जिन्हें थोड़ा संरक्षण दिया गया था, वो भी ख़त्म कर दिया गया है, यानी मोदी सरकार ने अब पूँजीपतियों को मुनाफ़ा कमाने के लिए पर्यावरण को तबाह करने की पूरी आज़ादी दे दी है। सुप्रीम कोर्ट ने 1996 में आदेश जारी किया था कि अगर किसी ज़मीन पर जंगल है, तो उसे संरक्षित किया जाए। सुप्रीम कोर्ट का यह फ़ैसला अब तक माँगर जैसे जंगली इलाक़ों में ज़मीन ख़रीदने-बेचने में क़ानूनी बाधा बना हुआ था। लेकिन हरियाणा सरकार ने पूँजीपतियों के हित में इस बाधा को चुपचाप हटा दिया, जिसका फ़ायदा रामदेव जैसे व्यापारियों को मिला।

हरियाणा राज्य के डिजिटल रिकॉर्ड में दर्ज पतंजलि से जुड़ी दर्जनों कंपनियों ने माँगर इलाक़े में ज़मीन की ख़रीद-फ़रोख़्त की है। इनमें 14 कंपनियों के पास 142 एकड़ ज़मीन है। लेकिन चूँकि डिजिटल रिकॉर्ड देरी से चढ़ाया जाता है, इसलिए संभावना है कि उपरोक्त इलाक़े से ज़्यादा भूमि इन फ़र्ज़ी कंपनियों के क़ब्ज़े में होगी।

पतंजलि समूह से जुड़ी फ़र्ज़ी कंपनी 'पतंजलि कौरूपैक प्राइवेट लिमिटेड' के पैसों के लेन-देन के 12 साल के रिकॉर्ड की जाँच से पता चला है कि 2009 में यह कंपनी रामदेव के भाई राम भरत और रामदेव के दोस्त आचार्य बालकृष्ण, जोकि पतंजलि आयुर्वेद लिमिटेड का सी.ई.ओ. है, द्वारा शुरू की गई थी। रामदेव और राम भरत के मुताबिक़, यह कंपनी 'पैकेजिंग मटेरियल मैन्युफ़ैक्चरिंग' का काम करती है। लेकिन इस कंपनी के पिछले 12 सालों के रिकॉर्ड के मुताबिक़ इस कंपनी ने 'पैकेजिंग मटेरियल मैन्युफ़ैक्चरिंग' के बाज़ार में 1 रुपए का भी कारोबार नहीं किया है, बल्कि सिर्फ़ ज़मीन ख़रीदने और बेचने का काम किया है। क़ानूनी तौर पर ऐसी कंपनी अपने काम के लिए ज़मीन लीज पर तो ले सकती है, लेकिन ज़मीन ख़रीद और बेच नहीं सकती। लेकिन अगर यार सत्ता में बैठे हों तो क्या मजाल है कि क़ानून रामदेव जैसों का कुछ बिगाड़ सके। ऐसी ही एक और फ़र्ज़ी कंपनी 'करखल आयुर्वेद' ने माँगर में 43 एकड़ ज़मीन ख़रीदी और फिर 2011 में इस ज़मीन को एक कंस्ट्रक्शन कंपनी को बेच दिया, इस ख़रीद-बिक्री में इस कंपनी को 365 फ़ीसदी का मुनाफ़ा हुआ। रिपोर्ट में रामदेव के रिश्तेदारों और करीबियों के नाम पर खोली गई ऐसी कई कंपनियों का ज़िक्र है।

फ़िलहाल पतंजलि ग्रुप का कारोबार 45 हज़ार करोड़ तक पहुँच गया है और रामदेव का दावा है कि अगले पाँच साल में यह 1 लाख करोड़ तक पहुँच जाएगा। पतंजलि ग्रुप को मोदी सरकार द्वारा टैक्स में भी रियायत दी गई है। 2021 में मोदी सरकार ने पतंजलि रिसर्च फ़ाउंडेशन को 'शोध संस्थान' के रूप में वर्गीकृत किया और इसे पाँच साल के लिए कर से छूट दी।

एक साधारण संत से एक धार्मिक टीवी चैनल पर योग सिखाने से शुरुआत करके रामदेव ने पतंजलि समूह के नाम पर अरबों रुपए का साम्राज्य बनाया है। भाजपा के सत्ता में आने के बाद से यह कारोबार कई गुना बढ़ गया है। एक तरफ़ योग और आयुर्वेद और स्वदेशी के नाम पर रामदेव द्वारा आर.एस.एस.-भाजपा के हिंदुत्व के एजेंडे को प्रचारित किया जाता है, वहीं दूसरी तरफ़ इस प्रचार के ज़रिए पतंजलि उत्पादों का बाज़ार भक्तों के रूप में तैयार किया जाता है। जहाँ तक काले धन की बात है, तो मुनाफ़े के रूप में पूँजीपतियों का कुल धन ही काला है, क्योंकि इस धन का स्रोत मज़दूरों की लूट है। यह धन मज़दूरों की श्रम-शक्ति के शोषण से ही इकट्ठा होता है। स्वदेशी के नाम पर बना रामदेव का अरबों का कारोबार भी उसकी फ़ैक्टरियों में काम करने वाले मज़दूरों की लूट से ही फला-फूला है। वही मज़दूर जिनका ज़्यादा से ज़्यादा शोषण करने के लिए मोदी सरकार श्रम क़ानून में संशोधन कर पूँजीपतियों को खुली छूट दे रही है।

– तज़िंदर

पाँच राज्यों में चुनावों के नतीजों के मायने

(पन्ना 16 से आगे)

थे, जहाँ भाजपा के क्षेत्रीय प्रतिनिधित्व बचे हुए थे। अब इन चुनावों के बाद उन्हें भी दबा दिया गया है। भले ही इसका नुक़सान भाजपा को राज्यों के चुनाव में होता हो। कर्नाटक से लेकर झारखंड के चुनाव के नतीजे इसी बात की गवाही देते हैं, पर लोकसभा चुनाव में इसका फ़ायदा होगा या नहीं यह आने वाला समय ही बताएगा। दूसरी तरफ़ इन राज्यों में जातिवाद के समीकरण को ध्यान में रखते हुए दो-दो उपमुख्यमंत्री बनाए गए हैं, इसके पीछे कांग्रेस समेत दूसरे राजनीतिक दलों के 'इंडिया' गठजोड़ द्वारा जाति आधारित जनगणना की बात उठाने की काट के रूप में देखा गया है।

इन चुनाव नतीजों ने दिखा दिया है कि आर.एस.एस.-भाजपा के फ़ाशीवादी आंदोलन को कांग्रेस ख़त्म नहीं कर सकती। कांग्रेस भी भाजपा की तरह एक पूँजीपतियों की ही पार्टी है। इसका काम भी लोगों को लूटना है। अगर कांग्रेस चुनाव जीत भी जाती, तो उसने भाजपा के फ़ाशीवादी आंदोलन के लिए कोई ख़तरा पैदा नहीं करना था और लोगों का शोषण भी उसी तरह ही जारी रहता। असलीयत में दोनों ही पूँजीपतियों की पसंदीदा पार्टियाँ हैं। देश के एकाधिकारी पूँजीपतियों को अलग-अलग समय अपनी सेवा के लिए इनमें से किसी एक या दूसरी पार्टी की ज़रूरत पड़ती रहती है। इस समय भाजपा एकाधिकारी पूँजीपतियों को ज़्यादा रास आ रही है, इसलिए अलग-अलग राज्यों में यही जीत रही है।

लेकिन मेहनतकश लोगों को यह बात गाँठ बाँध लेनी चाहिए कि संसद-विधानसभा या अन्य संसदीय संस्थाएँ लोगों का प्रतिनिधित्व नहीं करती हैं। इन संस्थाओं के चुनाव में पूँजीपतियों की कोई भी पार्टी जीते, इसके साथ लोगों की ज़िंदगी में कोई बुनियादी बदलाव नहीं आने वाला। लोगों की असल मुक्ति पूँजीवादी व्यवस्था में इस या उस पार्टी को चुनने से नहीं होने वाली, बल्कि इस पूरी पूँजीवादी व्यवस्था को पलटने के साथ ही संभव है। इसलिए मेहनतकशों को पूँजीपतियों की इस या उस पार्टी पर भरोसा रखने की जगह अपनी संगठित ताक़त पर भरोसा कर उसे मज़बूत करने की ज़रूरत है।

टेसला मज़दूरों की बड़ी हड़ताल

कार बनाने वाली कंपनी टेसला का मालिक एलन मस्क दुनिया का सबसे अमीर पूँजीपति है। अक्सर उसका उदाहरण देकर यह कहा जाता है कि अपनी मेहनत और अकल से हर कोई अमीर बन सकता है। लेकिन सच यह है कि शोषण आधारित इस व्यवस्था में किसी पूँजीपति की कामयाबी उसके पास काम करने वाले मज़दूरों की लूट पर टिकी होती है। स्वीडन में टेसला कंपनी की मैनेजमेंट के ख़िलाफ़ हो रही हड़तालें इस बात को साबित करती हैं। यह साफ़ साबित करती हैं कि पूँजीपतियों की अमीरी का रास्ता, मज़दूरों के हक़ कुचलते हुए साफ़ होता है और ग़रीबी निकम्मेपन से नहीं, बल्कि लूट आधारित मौजूदा आर्थिक सामाजिक व्यवस्था से पैदा होती है।

स्वीडन में टेसला मज़दूरों की हड़ताल की शुरुआत 27 अक्टूबर को स्वीडन के एक टेसला सेवा केंद्र में हुई, जब 130 मकैनिकों ने काम करना बंद कर दिया। कारण था कि टेसला कंपनी ने मज़दूरों के साथ हुए समझौतों को मानने से मना कर दिया, जिनके तहत कंपनी को मज़दूरों को न्यूतनम वेतन, काम के घंटे और कार्य परिस्थितियों, ओवरटाइम की शर्तें, और अन्य ऐसे मज़दूर अधिकारों की शर्तों को मानना पड़ता है। उल्लेखनीय है कि वहाँ के मज़दूरों ने लंबी लड़ाई से ये हक़ हासिल किए हैं, जिन्हें मानने से टेसला कंपनी इनकार कर रही थी। इसके विरोध में मज़दूरों ने काम बंद कर दिया। छह दिनों के काम के हफ़्त और ज़्यादा ओवरटाइम जैसे दमनात्मक क़दमों के ख़िलाफ़ मज़दूर काफ़ी समय से संघर्ष कर रहे थे, लेकिन कंपनी मैनेजमेंट के कान पर जूँ तक नहीं रेंगी। "नोरडिक लेबर जर्नल" के मुताबिक़ 130 मज़दूरों से शुरू हुई यह हड़ताल दिसंबर तक टेसला की 17 वर्कशॉपों के 500 मज़दूरों तक फैल गई है।

मज़दूरों में मुक़ाबलेबाज़ी बढ़ाने के लिए टेसला ने मज़दूरों के काम के आधार पर नंबर देकर मूल्यांकन किया जाता है। ज़्यादा नंबरों के लिए उन्हें बिना ज़्यादा वेतन के ज़्यादा काम करना पड़ता है। एक मज़दूर के मुताबिक़ ऐसा बर्ताव दूसरी कंपनियों में भी देखने को मिलता है। उसके मुताबिक़ "किसी को काम के घंटों और काम की हालतों के क़ानून के बारे में नहीं पता। मैनेजमेंट को इस बात की बिल्कुल फ़िक्र नहीं कि हम मज़दूर काम के दौरान किस क़िस्म के रसायनों का इस्तेमाल करते हैं और उनका हमारे शरीर के लिए क्या ख़तरा होता है?"

अब स्वीडन के मज़दूरों का यह संघर्ष सिर्फ़ टेसला कंपनी तक सीमित नहीं रहा। वर्ग एकता का प्रदर्शन करते स्वीडन के अन्य क्षेत्रों के मज़दूरों द्वारा भी टेसला के संघर्षशील मज़दूरों को हिमायत दी जा रही है। डाक, सफ़ाई, बिजली कर्मचारी और परिवहन मज़दूर टेसला कंपनियों को अपनी सेवाएँ बंद कर रहे हैं। नवंबर में स्वीडन ट्रांसपोर्ट मज़दूर यूनियन ने देश की सारी बंदरगाहों पर टेसला कारों का परिवहन बंद कर दिया। 17 नवंबर 2023 से एक बंदरगाह मज़दूर यूनियन ने टेसला कारों का परिवहन बंद कर दिया। सेको, जो कि सेवा और संचार क्षेत्र के मज़दूरों की यूनियन है, ने 20 नवंबर से पोस्टनोरड और सिटीमेल द्वारा स्वीडन में टेसला की काम की जगहों पर पहुँचाई जाने वाली डाक और पार्सलों की सेवा को बंद कर दिया है, जिसके कारण स्वीडन ट्रांसपोर्ट विभाग की लाइसेंस प्लेटों का इस्तेमाल बंद हो गया है। नवंबर 2023 में बिजली कर्मचारियों की यूनियन ने टेसला संस्थानों और चार्जिंग स्टेशनों की मरम्मत करने से इनकार कर दिया। पेंटर यूनियन ने टेसला गाड़ियों को रंग करने से इनकार कर दिया। भवन रखरखाव मज़दूर यूनियन ने 17 नवंबर 2023 से कंपनी से संबंधित हर तरह के काम को बंद कर दिया और इमारत मज़दूर यूनियन ने टेसला वर्कशॉपों के रखरखाव और पैदावार का काम बंद कर दिया। 13 दिसंबर को ट्रांसपोर्ट मज़दूर यूनियन ने ऐलान किया कि 24 दिसंबर से टेसला वर्कशॉपों का कूड़ा उठाना बंद कर दिया जाएगा।

स्वीडन में इन हड़तालों के असर को कम करने के लिए टेसला मैनेजमेंट, स्वीडन के पड़ोसी देशों में गाड़ियाँ उतारकर, उन देशों से कारों को यहाँ पहुँचा रहे हैं। इसके विरोध में डेनमार्क, नॉर्वे और फ़िनलैंड के बंदरगाह और ट्रांसपोर्ट मज़दूरों ने भी इस संघर्ष की हिमायत में हड़तालों और बॉयकाट का आह्वान किया है। इससे स्वीडन के मज़दूरों से शुरू हुई यह हड़ताल अब हदों-सरहदों से पार वर्ग एकता का प्रतीक बन गई है।

इस हड़ताल के प्रति टेसला कंपनी और उसके मालिक का रवैया बड़ा बेशर्मी वाला रहा है। एलन मस्क ने इस हड़ताल के बारे में ट्वीट करते हुए कहा है कि "यह पागलपन है"। मज़दूरों की माँगों की तरफ़ ध्यान देने की बजाय, कंपनी ने स्वीडन ट्रांसपोर्ट एजेंसी और पोस्टनोरड कंपनियों के ख़िलाफ़ मुक़द्दमे दायर किए हैं, ताकि लाइसेंस प्लेटें पहुँचाने वाले डाक मज़दूरों को बर्ख़ास्त किया जाए। कंपनी शुरू से ही मज़दूरों के संगठित होने का विरोध करती रही है और उसके कर्मचारियों की हालतें अन्य कंपनियों से बेहतर होने की दलील देती रही है। पर 1,20,000 मज़दूरों वाली कंपनी की यह दलील, स्वीडन के मज़दूरों ने बेपर्द कर दी है।

"द न्यूयॉर्क टाइम्स" जैसे पूँजीवादी अख़बार इसे पूँजीवाद के स्वीडन मॉडल और अमेरिकी मॉडल के विरोधाभास की तरह प्रचार रहे हैं। असल में यह मज़दूरों की काम की बुरी हालतों, कम वेतन और अँधी लूट का इज़हार है, जो हड़ताल के रूप में बाहर आया है। जिसे एलन मस्क पागलपन बताता है, वह दरअसल मज़दूरों के अपने वाजिब हक़ों कि लड़ाई है, जिसमें अभी तक कंपनी को मुँह की खानी पड़ी है। अन्य क्षेत्रों के मज़दूरों द्वारा मिली हिमायत मज़दूरों की व्यापक एकता का प्रतीक है। इसके साथ यह विचार भी बेपर्द हुआ है कि पूँजीवादी व्यवस्था में हर कोई अमीर हो सकता है। मज़दूरों की अंधाधुंध लूट पर खड़े दुनिया के सबसे अमीर व्यक्ति की "मेहनत" का आधार नंगा हो चुका है। पर यह लड़ाई सिर्फ़ स्वीडन या स्कैंडिनेविया की माँगें माने जाने से ख़त्म नहीं होने वाली, बल्कि यह तो शुरुआत है। अभी तो मज़दूरों के आगे पूँजीवादी व्यवस्था की लूट को सही नेतृत्व में संगठित होकर ख़त्म करने का और समाजवाद के निर्माण का बड़ा लक्ष्य खड़ा है।

– जोबन

क्यों हो रही हैं भारत में हर घंटे बीस आत्महत्याएँ?

भारत सरकार की संस्था राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो द्वारा हर वर्ष की तरह वर्ष 2022 में अपराध और हादसों के बारे में अपनी रिपोर्टें जारी की गई हैं। इन सभी रिपोर्टों में एक रिपोर्ट आत्महत्याओं को लेकर है, जिस पर ध्यान दिया जाना चाहिए। इस रिपोर्ट के अनुसार 2022 में 1,70,924 आत्महत्याएँ दर्ज हुई हैं यानी भारत में हर महीने 14,244, हर रोज़ 475 और हर घंटे करीब 20 आत्महत्याएँ हुई हैं। हर तीन मिनट में एक व्यक्ति अपनी ज़िंदगी ख़त्म करने के लिए मजबूर होता है। पेशे के आधार पर अगर बात करें, तो आत्महत्या करने वालों में 41,433 दिहाड़ीदार मज़दूर, 25,309 घरेलू स्त्रियाँ, 18,357 ख़ुद के काम-धंधों में लगे, 15,783 बेरोज़गार, 14,395 नौकरीपेशा लोग, 11,290 कृषि क्षेत्र में लगे लोग (5,207 किसान और 6,083 कृषि मज़दूर) और 13,044 छात्र और अन्य लोग शामिल हैं। उम्र के हिसाब से बात करें, तो सबसे ज़्यादा (1,13,433) आत्महत्याएँ 18 से 45 साल के आयुवर्ग की हुई हैं और 18 साल से कम उम्र के 10,204 बच्चों ने आत्महत्या की है। सनद रहे कि भारत में अनेकों अपराध और आत्महत्याएँ आदि क़ानूनी प्रक्रिया में दर्ज नहीं होते हैं। इसलिए असल में आत्महत्याओं की संख्या उपरोक्त आँकड़ों से कहीं ज़्यादा है।

रिपोर्ट के अनुसार 1,09,875 (64.3%) आत्महत्याएँ करने वालों की आमदनी सालाना एक लाख से कम है और 52,429 (30.7%) की आमदनी सालाना एक लाख से पाँच लाख के दरमियान है। इस प्रकार अगर काम और आमदनी के नज़रिए से देखें तो सबसे ज़्यादा मेहनतकशों को ही मरने के लिए मजबूर होना पड़ रहा है, उनमें से भी मज़दूरों की संख्या ज़्यादा है, क्योंकि दिहाड़ीदार मज़दूरों, खेत मज़दूरों के अलावा घरेलू औरतों, बेरोज़गारों और छात्रों में भी कई मज़दूर परिवारों से संबंध रखते हैं। उपरोक्त आँकड़े बताते हैं कि आत्महत्या एक गंभीर सामाजिक समस्या बन चुकी है। यह मौजूदा आदमखोर पूँजीवादी व्यवस्था की नाकामी और मानवरोधी फ़ितरत का प्रत्यक्ष सबूत है।

इन आत्महत्याओं के कारणों की व्याख्या करने के मामले में यह रिपोर्ट पूरी तरह विफल रही है, बल्कि वास्तविकता पर पर्दा डालती है। असल में पूँजीवादी व्यवस्था के सेवक बुद्धिजीवी कभी भी इस बात को स्वीकार नहीं करेंगे कि ये आत्महत्याएँ पूँजीवादी व्यवस्था की देन हैं। इस रिपोर्ट में आत्महत्याओं के सबसे ज़्यादा मामलों में (31.7) आत्महत्या का कारण पारिवारिक समस्या और दूसरा बड़ा कारण बीमारियों (18.4) को बताया है। परंतु हक़ीक़त यह है कि ज़्यादातर घरेलू समस्याएँ आर्थिक बदहाली से ही पैदा होती हैं। इसलिए बीमारी के कारण आत्महत्या के लिए वही मजबूर होंगे, जो अपना इलाज करवाने में असमर्थ हैं। हमारे कहने का यह अर्थ नहीं है कि आत्महत्याओं के पीछे महज आर्थिक कारण ही होता है। बेशक आत्महत्याओं के कारण सामाजिक और सांस्कृतिक भी होते हैं, परंतु ऐसे कारण प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से समाज के समाज की आर्थिक संरचना से ही जुड़े होते हैं।

भारत की आर्थिक संरचना या असमानता की बात करें, तो 2022 की

(अगले पन्ने पर जारी)

(पिछले पन्ने से आगे)

एक रिपोर्ट के अनुसार भारत के ऊपर के 1 प्रतिशत अमीर देश की 77 प्रतिशत जायदाद पर काबिज़ हैं। साल 2017 में पैदा हुई कुल दौलत का 73 प्रतिशत देश के शीर्ष एक प्रतिशत अमीरों के पास गया और नीचे के 50 प्रतिशत यानी 70 करोड़ लोगों की जायदाद में सिर्फ़ 1 प्रतिशत की बढ़ोतरी हुई है। मज़दूरों को अपनी श्रम शक्ति बेचने के बदले में इतना कम हिस्सा मिलता है कि उनकी अपनी बुनियादी ज़रूरतें भी पूरी नहीं होतीं। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के 77वें चरण के अनुसार, एक खेत मज़दूर की मासिक औसत कमाई 4,063 रुपए है, जिसके सहारे उन्हें पूरे परिवार का पालन पोषण करना पड़ता है। भारत सरकार के श्रम और रोज़गार मंत्रालय के अनुसार 2016 में एक मज़दूर का औसत न्यूनतम वेतन 176 रुपए रोज़ाना मिलता था। 2019 में बढ़कर यह 178 रुपए रोज़ाना हो गया था और 2022 में भी यह 178 रुपए ही है। परंतु इन 6 सालों में महँगाई 2-3 गुणा तक बढ़ गई है। इस तरह असल में मज़दूरों की असली आमदनी घटी ही है। दूसरी तरफ़ भारत में साल 2017 में 101 अरबपति थे और 2022 में इनकी संख्या बढ़कर 119 हो गई है। पिछले 10 सालों में इन पूँजीपतियों की दौलत दोगुनी हो गई है।

इस असमानता का कारण पूँजीवादी संबंधों पर आधारित समाज की आर्थिक संरचना है। पूँजीवादी संबंधों का मतलब है कि पूरे समाज के लिए सभी वस्तुएँ उपजाने के साधनों का स्वामित्व सामाजिक नहीं बल्कि निजी है। यानी कारख़ानों, उद्योगों, ज़मीनों, और खदानों आदि पर चंद लोगों की मिल्कियत होती हैं, जिन्हें पूँजीपति कहा जाता है। दूसरी तरफ़ बहुगिनती मज़दूर आबादी है, जिसके पास ख़ुद के कोई संसाधन ना होने के कारण वह पूँजीपतियों के अधीन मज़दूरी के लिए विवश होती है। इन सब साधनों के माध्यम से सब वस्तुओं की पैदावार मज़दूर करते हैं, पर निजी स्वामित्व के कारण उपज का बड़ा हिस्सा पूँजीपतियों के पास चला जाता है और मज़दूरों को उजरत के रूप में बहुत थोड़ा हिस्सा मिलता है। निष्कर्ष यह निकलता है कि एक तरफ़ पूँजीपतियों के हाथ में जायदाद दिन प्रतिदिन बढ़ती जाती है और दूसरी तरफ़ मज़दूर आबादी को अपनी बुनियादी ज़रूरतें पूरी करने के लिए भी जद्दोजहद करनी पड़ती है। एक तरफ़ सब कुछ पैदा करने वाले मज़दूर-मेहनतकश मुश्किल से गुज़र-बसर करते हैं और दूसरी तरफ़ पूँजीपतियों के पास बेहिसाब धन-दौलत इकट्ठा होती जाती है। इस प्रकार उत्पादन के सामाजिक होने के बावजूद उत्पादन के साधनों का निजी स्वामित्व इस पूँजीवादी समाज का सबसे बड़ा नुक्स है। जो समाज की बहुसंख्या – मज़दूरों-मेहनतकशों की दुर्गति का ज़िम्मेदार है। इस माहौल में बहुत सारे मज़दूरों के लिए रोज़ाना की रोज़ी-रोटी की जद्दोजहद ही ज़िंदगी और मौत का सवाल बन जाती है। इन्हीं आर्थिक परेशानियों, क़र्ज़, बीमारियों, बेरोज़गारी और अन्य पारिवारिक ख़र्चों से दो-चार होते हुए मेहनतकश आबादी का एक हिस्सा निराश होकर ख़ुद अपनी ज़िंदगी को ख़त्म करने का अंतिम क़दम उठाने के लिए मजबूर हो जाता है।

पूँजीवादी व्यवस्था सिर्फ़ आर्थिक असमानता को ही जन्म नहीं देती है। ऐसी ही एक समस्या है बेगानगी यानी परायापन। बेगानगी यानी परायापन का अर्थ है मनुष्य का अपने मनुष्यता के सारतत्व से पराया होना, ऊँची मानवीय रुचियों, भावनाओं और रिश्तों से दूर होना, दूसरे शब्दों में कहें तो पूँजीवादी व्यवस्था लोगों को आत्मिक खोखलेपन की तरफ़ ले जाती है और उनमें पशुवृत्तियों को ज़्यादा प्रभावी बनाती है। इसी कारण तेज़-तरार, चहल-पहल और चारों ओर लोगों से लबालब भरी ज़िंदगी में भी बहुत सारे लोग अकेलेपन और अन्य मानसिक बीमारियों के ज़्यादा शिकार होते हैं। पूँजीवादी समाज का ऐसा सांस्कृतिक असर आर्थिक परेशानियों और सामाजिक समस्याओं (जैसे छात्रों के ऊपर परीक्षाओं का दबाव, रिश्तों का असफल होना और अन्य कई तरह का मानसिक तनाव) आदि लोगों को निराशा, मानसिक बीमारियों और कई बार आत्महत्या की ओर धकेल देता है। इस तरह आर्थिक असमानता से पैदा समस्याओं के साथ-साथ पूँजीवादी व्यवस्था द्वारा पैदा की जा रही बेगानगी ही इन आत्महत्याओं का वास्तविक कारण है। यह ऐतिहासिक तथ्य है कि पूँजीवाद की आमद से पहले सामाजिक व्यवस्था में आत्महत्याएँ इतनी आम नहीं थी, बेशक वह व्यवस्था भी लूट आधारित और आज से भी ज़्यादा कष्टकारी रही हो। इस प्रकार आत्महत्या कोई व्यक्तिगत घटनाएँ नहीं है, बल्कि एक गंभीर सामाजिक समस्या है, जो पूँजीवादी व्यवस्था की असफलता और उसके मानव विरोधी स्वभाव का स्पष्ट इज़हार है। इस समाज को चलाने के लिए सबसे ज़्यादा मेहनत करने वाले मज़दूरों-मेहनतकशों को ही आत्महत्या का रास्ता चुनने के लिए मजबूर होना पड़े, यह कोई मानव पक्षधर समाज नहीं हो सकता। आत्महत्याओं के इस अमल को पूँजीवादी व्यवस्था में सुधारों के ज़रिए रोकना असंभव है, चूँकि पूँजीवादी समाज का अस्तित्व ही असमानता पर टिका हुआ है, इसके लिए पूँजीवादी व्यवस्था को नेस्तनाबूत करके ही ऐसी सामाजिक व्यवस्था का निर्माण किया जाना चाहिए, जहाँ असमानता ना हो, जहाँ आर्थिक कठिनाई के कारण किसी को आत्महत्या का रास्ता चुनने के लिए मजबूर ना होना पड़े और और जहाँ पूँजीवादी बेगानगी की जगह मनुष्य की अच्छी भावनाएँ ज़्यादा प्रफुल्लित हो सके। अन्य शब्दों में कहें तो पूँजीवादी व्यवस्था की जगह समाजवादी व्यवस्था की स्थापना से ही मानवता की मुक्ति हो सकती है। इस समाज की वैज्ञानिक सच्चाई है कि आज समाज की जिस मज़दूर-मेहनतकश आबादी का एक हिस्सा आत्महत्या के रास्ते पर जा रहा है। इस मज़दूर-मेहनतकश आबादी के पास इस समाज को बदलने की शक्ति है। इस व्यवस्था द्वारा पैदा की जा रही समस्याओं से तंग आकर आत्महत्या करना मज़दूर-मेहनतकशों का रास्ता नहीं है, बल्कि उनका असल मार्ग संगठित होकर इन समस्याओं को ख़त्म करने के लिए संघर्ष करना है। इसीलिए क्रांतिकारी कार्यकर्ताओं का यह कर्तव्य है कि वे इस मज़दूर-मेहनतकश आबादी को उनकी असल ताक़त का अहसास करवाएँ। उनके सामने निराशा और आत्महत्याओं की जगह संगठित जुझारू संघर्षों का असल रास्ता पेश करें। इसी रास्ते से पूँजीवादी व्यवस्था की जगह समाजवादी व्यवस्था का निर्माण संभव है।

– गुरप्रीत

पहले समाजवादी राज्य का आँखों देखा वर्णन करती पुस्तक 'स्तालिन युग'

अन्ना लुई स्ट्रांग द्वारा 'स्तालिन युग' किताब नवंबर 1956 में लिखी गई थी, जो समाजवादी सोवियत संघ का आँखों देखा विवरण पेश करती है। अन्ना एक अमेरिकी पत्रकार थीं, जो जीवन-भर अपने लेखन और रिपोर्टों के ज़रिए समाजवादी सोवियत यूनियन और चीन का आँखों देखा चित्रण पेश करती रहीं। अन्ना की अनेकों किताबें सोवियत यूनियन और चीन में क्रांति के समय पर केंद्रित हैं।

कामरेड लेनिन के नेतृत्व में रूस की अक्टूबर क्रांति (1917) से इतिहास का एक नया दौर शुरू हुआ। क्रांति के बाद के दौर में वहाँ रूसी और अन्य राष्ट्रीयताओं ने मिलकर सोवियत समाजवादी गणतंत्रों का संघ (यू.एस.एस.आर.) नाम के समाजवादी देश का निर्माण किया (1922), जिसे सोवियत संघ भी कहा जाता है। इस दौर को अमर बनाने वाले पहले समाजवादी देश के निर्माण का नेतृत्व करने वाले कामरेड जोसेफ़ स्तालिन के दौर में सोवियत यूनियन ने जो कर दिखाया वह एक युग साबित हुआ।

अन्ना इस पुस्तक की ज़रूरत के बारे में लिखती हैं कि, "इस युग का निचोड़ निकालने में शायद जल्दबाजी होगी, लेकिन इसकी कोशिश ज़रूर की जानी चाहिए, क्योंकि इस बारे में ज़ोरदार विवाद खड़े हुए हैं और दुनिया में अनेक लोगों के विश्वास को तोड़ा जा रहा है। समाजवाद के शुरुआती निर्माण के दौरान क्रूर अन्याय और कठोर दमन के हज़ारों कृत्यों के बारे में ख्रुश्चेव के रहस्यमय तरीक़े से रहस्योद्घाटन से दुनिया के सबसे बेहतरीन लोग सबसे ज़्यादा हैरान हुए हैं।"

कामरेड स्तालिन की मौत के बाद, सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की 20वीं कांग्रेस में अपने गुप्त भाषण के ज़रिए ख्रुश्चेव द्वारा स्तालिन के ख़िलाफ़ प्रचार ने सोवियत संघ की जनता, समाजवादी खेमे के लोगों के बीच भ्रम की स्थिति पैदा करके प्रति-क्रांति की योजना को अंजाम दिया। फ़रवरी 1956 की कांग्रेस के बाद, नवंबर 1956 में एक दस्तावेज़ के रूप में अन्ना इस पुस्तक को लेकर आईं। यह किताब ना तो स्तालिन की जीवनी है, ना ही इसमें स्तालिन की प्रशंसा में पुल बाँधे गए हैं। 1917 से 1956 तक यह देश कौन-से आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक परिवर्तनों से गुज़रा? स्तालिन इस परिवर्तन का केंद्र कैसे बने? कम्युनिस्ट पार्टियों की कमियों, कमजोरियों, उपलब्धियों और ग़लतियों आदि के बारे में अपनी समझ के अनुसार लिखा है।

अन्ना को ख़ुद स्तालिन के समय में गिरफ़्तारी और निर्वासन झेलना पड़ा। अन्ना ने द्वितीय विश्व युद्ध में अपने पति और दोस्तों को युद्ध की भेंट चढ़ते देखा। स्तालिन के समय में समाजवादी सोवियत संघ के निर्माण में जो कुछ हुआ, गृहयुद्ध के बाद पिछड़े देश को अपने पैरों पर खड़ा होते हुए उन्होंने अपनी आँखों से देखा। अन्ना उस युग की सच्चाइयों से सीधी जुड़ी हुई थीं।

पंजाबी में अनुवादित किताब के अनुवादक साथी रणजीत लहरा ने लिखा है कि इस किताब की कुछ सीमाएँ भी हैं। लेखिका ने यह पुस्तक शुद्ध इतिहासकारी के इरादे से नहीं लिखी है। उनका इरादा उसी वक्त प्रतिक्रिया देने का था। इसीलिए समय की कमी के कारण लेखिका बहुत से तथ्यों की गहराई से जाँच नहीं कर पाईं और कहीं-कहीं उनका नज़रिया नकारात्मक भी रहा। इसके साथ-साथ लेखिका ने उस दौर के नकारात्मक अनुभवों को प्रस्तुत करते हुए, उस समय की सीमाओं को समझते हुए एक संतुलित दृष्टिकोण बनाने की कोशिश की है। लेखिका ने इस पुस्तक को 10 पाठों में विभाजित किया है। इन पाठों की श्रृंखला समयानुसार क्रमवार

(अगले पन्ने पर जारी)

(पिछले पन्ने से आगे)

आगे बढ़ती है।

पहले पाठ – 'एक देश में समाजवाद' में लेखिका बताती हैं कि रूस एक पिछड़ा हुआ कृषि प्रधान देश था। प्रथम विश्व युद्ध में जब ज़ारशाही रूस का पतन हुआ, तो देश में कोई माल नहीं था, कोई कच्चा माल नहीं था, ना ही मशीनें थीं और अनाज बहुत कम था। युद्ध के कारण रूस खंडहर में तब्दील हो गया। इस देश में 1920-21 तक घुसपैठ और युद्ध होते रहे। 1921 में मैंने देखा कि यहाँ स्कूल होते हुए भी किसानों के बच्चे स्कूल जा सकने की हालत में नहीं थे।

1924 में कामरेड लेनिन की मृत्यु हो गई, लेकिन लेनिन के ज़रिए लोगों की आँखों में एक ऐसे देश का सपना बस गया था जो दुनिया का सबसे समृद्ध और प्रगतिशील देश होगा। लेनिन की मृत्यु के बाद पार्टी के भीतर एक ऐसा गुट बन चुका था, जो एक देश में समाजवाद की अवधारणा को नकारने लगा था, लेनिन की मृत्यु के बाद इस पर एक प्रश्न के रूप में चर्चा छेड़ दी गई थी। उस समय स्तालिन ने मार्क्सवाद का सच्चा पैरोकार होने का कर्तव्य निभाया। लोगों की, लेनिन की आशाओं को चकनाचूर करने वाले सभी विचारों के ख़िलाफ़ दृढ़ता से वो डटे रहे। लेखिका बताती हैं कि स्तालिन में लोगों की आकांक्षाओं को समझने और उन्हें साकार करने की क्षमता थी। लेखिका लिखती हैं कि सोवियत संघ में बिताए गए उन वर्षों के दौरान मैंने कभी भी लोगों को स्तालिन का निर्णय, स्तालिन का आदेश कहते नहीं सुना था।

इस पुस्तक के दूसरे अध्याय – 'पंचवर्षीय योजना' में, लेखिका विदेशी ताक़तों से आज़ादाना तौर पर सोवियत संघ की कायापलट की कहानी बयान करती हैं। ऐसी पंचवर्षीय योजना जिसमें कम्युनिस्ट, सारे सोवियत लोग तूफ़ानी ताक़त से लग गए। एक ऐसा तूफ़ान जिसमें ज़बरदस्त मेहनत, लगन, सामूहिकता, त्याग, दृढ़ संकल्प शामिल था। पूँजीवादी देशों ने सोवियत संघ की पंचवर्षीय योजना को एक ख़याली-पुलाव बताया गया, लेकिन इस योजना के सभी लक्ष्य सवा चार वर्षों में ही हासिल कर लिए गए। लेनिनग्राद से व्लादिवोस्तोक तक, पूरे देश में समाजवादी निर्माण की एक शक्तिशाली गूँज सुनाई दी। उत्तर से दक्षिण तक उजाड़ बियाबान मैदानों के बीच से गुज़रने वाली एक हज़ार मील लंबी रेलवे निर्धारित समय से डेढ़ साल पहले बना दी गई थी। कुछ अमेरिकी इंजीनियर योजना में मदद के लिए ठेके पर आए थे। उनका कहना था कि यह किसी भी तरह से वास्तविक योजना नहीं है। तकनीकी रूप से भी वे ठीक थे. ...यह एक चुनौती थी। इसका सामना किया जाना था और उस पर पार पाया जाना था। यह केवल मास्को से नहीं बनाई गई, बल्कि इसे देश के सबसे सुदूर इलाक़े और मास्को के लोगों ने मिलकर बनाया था। जनवरी 1933 में स्तालिन ने केंद्रीय समिति को बताया कि हमारे पास ट्रैक्टर कारख़ाने, बिजली संयंत्र, लोहा गलाने की भट्टियाँ, मोटर वाहन उद्योग, विमान उद्योग, रसायन उद्योग आदि सब हैं। ये उपलब्धियाँ सोवियत संघ द्वारा इतने बड़े पैमाने पर हासिल की गईं कि उसके सामने यूरोप का उद्योग फीका पड़ गया।

इस पुस्तक के अगले पाठ – 'कृषि क्षेत्र में क्रांति' में लेखिका कृषि की पद्धति में, किसानों में आए बदलाव और उस दौरान आने वाली चुनौतियों के बारे में उदाहरण देकर बात करती हैं। 1930 से 1933 के बीच लगभग एक करोड़ चालीस लाख छोटे नाकारा जोतों (काश्तों) को इकट्ठा करके लगभग दो लाख बड़े फ़ार्म बनाए गए थे। जिनकी मालिकी और प्रबंधन सामूहिक था और इनमें खेती के लिए ट्रैक्टरों और मशीनों का इस्तेमाल किया जाता था। लेखिका बताती हैं कि कृषि की मध्ययुगीन पद्धति से आधुनिक कृषि की ओर बढ़ना एक चुनौती था। ऐसी व्यवस्था जहाँ अंधविश्वास, पादरियों के कहने से खेतों में बिजाई और कटाई की जाती थी, किसान पादरियों के पीछे लगकर ट्रैक्टरों को शैतान कहकर पत्थर मारते थे, वहाँ आधुनिक कृषि प्रणाली स्थापित करना कठिन था। इस पाठ में वह विदेशी कुत्साप्रचार कि 'स्तालिन ने बलपूर्वक सामूहिक फ़ार्म बनवाए' का तथ्यों और प्रमाणों सहित जवाब देती हैं। इसके साथ ही उस समय कुलकों द्वारा सामूहिक फ़ार्मों को तोड़ने के लिए किए गए घटिया कारनामों, अफ़वाहों, कम्युनिस्टों की सामाजिक संपत्ति की अवधारणा की झूठी छवि का विशेष ज़िक्र किया है।

इस दौरान ना केवल उद्योग और कृषि क्षेत्र में ही क्रांति हुई, बल्कि लोगों की एक ऐसी पीढ़ी तैयार हुई, जैसी पहले कभी नहीं थी। जिसका उल्लेख उन्होंने 'नए इंसान' शीर्षक पाठ में किया है। सामूहिक खेतों में आने से केवल फ़सलों का उत्पादन ही नहीं बढ़ा, बल्कि किसानों ने पढ़ना-लिखना सीखा; वे विज्ञान, खेल के क्षेत्र में भी बेहतरीन प्रदर्शन कर रहे थे। दो वर्षों के भीतर यूक्रेन में सात हज़ार छोटी प्रयोगशालाएँ थीं, जिनमें गाँव के किसान ही वैज्ञानिक थे। हरेक सामूहिक फ़ार्म की अपनी नाटक मंडली, अपने क्लब थे। अन्ना लिखती हैं कि "जब अमेरिकी सोवियत लोगों को सैनिक के रूप में हुकुम बजाने वाले कहते थे, तो मुझे हँसी आती थी। ...मैं कभी भी किसी भी देश में इतने प्रभावशाली लोगों से नहीं मिली, जितने मैंने सोवियत संघ में पंचवर्षीय योजना में देखे। अनपढ़ किसान कृषिविज्ञानी, शौक़िया अभिनेता, पैराशूट के खिलाड़ी और विमान चालक बन गए थे। औरतें अब पहले वाली औरतें नहीं रहीं, बैठकों में भाग लेने से लेकर, कारख़ानों में काम करने, पढ़ने-लिखने तक वे हर क्षेत्र में आगे बढ़ रही थीं।"

इससे आगे लेखिका ने ऐसे दौर का ज़िक्र किया है, जिस पर सबसे ज़्यादा विवाद है। उन्होंने इस पाठ को 'बहुत बड़ा पागलपन' का नाम दिया। 20वीं कांग्रेस में ख्रुश्चेव ने स्तालिन की मौत के बाद उन पर जो कीचड़ उछाला, उसे पूँजीवादी मीडिया, विदेशी पत्रकारों ने हाथों-हाथ लिया। स्तालिन को "तानाशाह", "सनकी", "सत्ता का अहंकारी" आदि विशेषण दिए गए और उन्हें निर्दोष लोगों की हत्या के लिए ज़िम्मेदार ठहराने में कोई कसर नहीं छोड़ी। इस पर बात करते हुए अन्ना यह सवाल उठाती हैं कि स्तालिन के सबसे वफ़ादार साथी, जिन्होंने समाजवाद को मज़बूत करने के लिए कंधे से कंधा मिलाकर स्तालिन का साथ दिया, स्तालिन उनके क़त्ल क्यों करवाएँगे? इस पाठ में 1936-1938 के दौर की अलग-अलग घटनाओं का उल्लेख उन्होंने अपने निजी तजुर्बे के आधार पर किया। पार्टी में ऊँचे पदों पर ग़द्दारों, दुश्मनों, हिटलर के एजेंटों की घुसपैठ हो चुकी थी। ख़ुफ़िया पुलिस में ऊँचे पदों पर ऐसे लोग पहुँच चुके थे, जो क्रांति-विरोधी थे। लेनिन के समय के कुछ कम्युनिस्ट ग़द्दार बन गए थे। पुराने, ईमानदार, मेहनती और स्तालिन के सबसे करीबी कम्युनिस्ट साथियों को क़त्ल करवाया गया था।

इस पाठ को पढ़ते हुए पाठकों को इस बात का ख़याल रखना चाहिए कि 1956 तक बहुत-सी सच्चाइयाँ बाहर नहीं आई थीं और स्तालिन-विरोधी तत्व सिर उठा चुके थे। अन्ना स्वयं इस कुत्साप्रचार का कहीं-कहीं शिकार होती दिखाई देती हैं। इस पाठ को समाप्त करते हुए वह कहती हैं कि इस दौर ने सोवियत लोगों को आंतरिक शत्रु के ख़िलाफ़ चौकन्ना ज़रूर कर दिया था। इसी कारण ही दूसरा विश्व युद्ध लड़ने की शक्ति प्राप्त कर पाए थे।

इसके बाद ऐसे दौर की शुरुआत होती है, जिसे तजुर्बेकार जनरल स्तालिन पहले ही पहचान चुके थे। एक समाजवादी देश दुश्मन पूँजीवादी देशों से घिरा हुआ था, दूसरा जर्मनी में फ़ाशीवाद सिर उठा चुका था। इन सबका सामना करने के लिए सोवियत संघ को सही राजनीतिक नीति तैयार करनी थी और एक और युद्ध लड़ने की तैयारी करनी थी, जो उसके सिर पर मँडरा रहा था। अगले पाठ को लेखिका ने 'शांति के लिए संघर्ष की विफलता' नाम दिया है। सोवियत संघ कोई युद्ध नहीं चाहता था। इसलिए विभिन्न देशों के साथ विदेश नीति के तहत शांति समझौते के अनेक प्रयास किए गए। लेकिन अंत में शांति ना अपीलों से, ना ही अपने भौगोलिक क्षेत्र में कटौती से मिली। सोवियत संघ को लोगों को शांति प्राप्त करने के लिए अपने साहस और शहादत का सहारा लेना पड़ा। इस और अगले पाठ – 'हिटलर के लिए रास्ता रोकने का समझौता' में अन्ना ने उन सभी कोशिशों, रणनीतिक दाँव-पेंचों का ज़िक्र किया है, जिनसे सोवियत संघ ने हिटलर द्वारा थोपी जाने वाली जंग को दो साल रोके रखा। लेखिका लिखतीं हैं, "हिटलर ने देखा कि अकेले सोवियत संघ की शक्ति ने उसे यूरोप की संयुक्त सेनाओं से अधिक क्षति पहुँचाई थी। उसकी ताक़त पोलैंड, नॉर्वे, डेनमार्क, हॉलैंड, बेल्जियम, फ़्रांस, यूनान, यूगोस्लाविया और ब्रिटेन की संयुक्त ताक़त से भी अधिक थी। इसलिए उन्होंने पलटकर सोवियत संघ पर मानव इतिहास का सबसे बड़ा हमला किया।"

लेखिका के अनुसार, हिटलर के विरुद्ध, फ़ाशीवाद के विरुद्ध युद्ध सोवियत संघ के सभी लोगों का युद्ध था। अगले पाठ में वह उन सभी तरीक़ों का वर्णन करती हैं, जिनका प्रयोग लोगों द्वारा युद्ध में मुक़ाबला करने के लिए किया गया था। स्तालिन के नेतृत्व में नाज़ी सेना, जिसने ख़ुद को एक अजेय शक्ति के रूप में प्रचारित किया हुआ था, जो अपने बाज़ जैसे हमलों के लिए प्रसिद्ध थी, को एक ऐसी चुनौती का सामना करना पड़ा, जिसकी किसी को उम्मीद नहीं थी। जब नाज़ी सेना ने मास्को को घेरा हुआ था, तो स्तालिन ने कैसे एक झोंपड़ी में रहते हुए नेतृत्व किया; देश के बच्चों को, कारख़ानों को, फ़सलों को, सामूहिक शक्ति के सहारे, सही योजना से बचा लिया गया। दूसरे देशों की दोगली नीतियों के बारे में भी अन्ना ने लिखा है, जिसके कारण सोवियत संघ को युद्ध में सबसे अधिक नुक़सान उठाना पड़ा था।

इससे अगले पाठ में 'दूसरे पुनर्निर्माण' का ज़िक्र किया गया है, जो सोवियत संघ ने युद्ध के बाद किया था। लेखिका लिखतीं हैं, "पुनर्निर्माण का काम जीत से पहले ही शुरू हो चुका था...जब जीत मुक्कमल हो गई, बिना किसी नुक़सान के सोवियत संघ की नियोजित अर्थव्यवस्था शांतिकाल के उत्पादक कार्यों की तरफ़ रुख़ कर चुकी थी।" इस पाठ में साम्राज्यवादी चर्चिल की समाजवादी देश को ख़त्म करने की नीति का विशेष रूप से उल्लेख किया गया है। यहाँ लेखिका लिखती हैं कि सोवियत संघ मित्र देशों की संख्या बढ़ाना चाहता था। उन्हें अमेरिका से क़र्ज़ के रूप में राशि और मित्रता की विशेष सहायता की उम्मीद थी, लेकिन सोवियत संघ की यह उम्मीद पूरी नहीं हुई। लेकिन यह सच नहीं है कि

(पन्ना 10 पर जारी)

क्यों उठी रही है संसार में जनसंघर्षों की नई लहर?

यू.के. के मज़दूर सरकार के एक नादरशाही फ़रमान का विरोध कर रहे हैं। हड़ताल क़ानून, जो 9 दिसंबर 2023 को लागू हुआ है, असल में हड़ताल विरोधी क़ानून है। इसके मुताबिक़ मज़दूरों को हड़ताल के दौरान आठ क्षेत्रों में सीमित समय के लिए काम करना ही पड़ेगा। ऐसा ना करने की सूरत में मालिक के पास मज़दूर पर क़ानूनी कार्यवाही करने का अधिकार होगा। यानी हड़ताल करना केवल एक खानापूर्ति या प्रतीकात्मक कार्रवाई बनकर रह जाएगी। बेल्जियम में भी ऐसे ही एक प्रस्तावित क़ानून के विरोध में मज़दूर सड़कों पर हैं।

ये जन-विरोधी क़ानून और इनके जवाब में उठा संघर्ष यूरोप की मौजूदा स्थिति बयान करता है। आख़िर अंग्रेज़ हुकुमरानों को क्या ज़रूरत पड़ गई ऐसे क़ानून बनाने की?

असल में साल 2023 मज़दूर संघर्षों के फूटने का साल रहा है। और यह अकेले यूरोप की बात नहीं, बल्कि अमेरिका, चीन और जापान की भी यही कहानी रही है। पूँजीवादी व्यवस्था के शीशमहल के तौर पर जाने जाते इन देशों के बारे में डेढ़ दशक पहले तक कहा जाता था कि यहाँ का मज़दूर ख़ुशहाल मज़दूर है, जिसके पास पक्की नौकरी और अच्छी तनख़्वाह है, कि 1960-70 का संकट और मज़दूर संघर्ष अब अतीत की बात हो गए हैं और बुनियादी ज़रूरतों की अब कोई लड़ाई नहीं है, कि 'अमेरिकी सपना' फिर से जीत गया है। कई तो यहाँ तक भी कहते थे कि यहाँ तो कोई मज़दूर है ही नहीं। माना जाता था कि मज़दूर यूनियनें दबा दी गई हैं और दुबारा उनके संगठित होने की कोई संभावना नहीं। लेकिन इन देशों में उठे संघर्षों ने ख़ुशहाली के इस भ्रम को तार-तार कर दिया है।

पूँजीवादी लूट ही मौजूदा वर्ग संघर्ष का कारण बनी है। इस व्यवस्था में मज़दूरों की लूट ख़त्म होना असंभव है। क्योंकि इसी लूट पर तो सारी व्यवस्था टिकी हुई है। और इसीलिए देर-सवेर इस लूट के ख़िलाफ़ संघर्ष उठना भी लाज़मी है। बढ़ती महँगाई, गिरते वेतनों और रोज़गार की अनिश्चितता के कारण संयुक्त राष्ट्र अमेरिका 2022 से ही बड़े मज़दूर संघर्षों की दहलीज़ पर खड़ा था और 2023 ने यह साबित कर दिखाया।

डाक कर्मचारी, नर्सें, रेलवे मज़दूर आदि हर विभाग के मज़दूर हड़ताल, धरने-प्रदर्शन कर रहे हैं। अकेले संयुक्त राष्ट्र अमेरिका (आगे केवल अमेरिका) की बात करें, तो मज़दूरों के संघर्षों के आँकड़े जुटाने वाली एक संस्था 'लेबर एक्शन ट्रैकर' के मुताबिक़ 31 अक्टूबर 2023 तक 354 हड़तालें हुईं, जिनमें 4,92,000 मज़दूर शामिल हुए – यह गिनती 2021 में हड़तालों का हिस्सा बने मज़दूरों की गिनती से 8 गुना ज़्यादा थी और 2022 से 4 गुना। अमेरिका की लगभग सारी ऑटो कंपनियों के मज़दूर इस साल 14 सितंबर से तनख़्वाहों में बढ़ोतरी के लिए लगातार हड़तालें कर रहे हैं। ये हड़तालें अमेरिका के 88 सालों के इतिहास की सबसे बड़ी हड़तालें हैं, जिन्होंने ऑटो कंपनियों के मालिकों की नाक में दम कर रखा है। 'यूनाइटेड ऑटो वर्क्स' इस समय अमेरिका की सबसे बड़ी यूनियन है, जो 'बिग थ्री' कहीं जाने वाली तीन बड़ी कंपनियों – जनरल मोटर्स, फ़ोर्ड, स्टेलांटिस के ख़िलाफ़ संघर्ष कर रही है। अन्य क्षेत्रों की बात करें, तो 75000 नर्सों ने हड़ताल के दम पर तनख़्वाह में 21% की बढ़ोतरी करवाई। हॉलीवुड के 11,500 हज़ार लेखक और 65,000 अदाकार लगातार जुलाई से बड़ी कंपनियों जैसे नेटफ़्लिक्स, वाल्ट डिज़्नी आदि के ख़िलाफ़ संघर्ष कर रहे हैं। पिछले साल दिसंबर में 80,000 रेलवे कर्मचारियों की हड़ताल की घोषणा की गई थी, जिसके दबाव में बाइडेन ने हड़ताल से पहले ही सदन बुलाकर उनकी माँगें मान लीं। अक्टूबर 2021 में जॉन-डीआर कंपनी के 10,000 मज़दूर हड़ताल पर गए। कैलोगस के मज़दूरों की हड़ताल अक्टूबर 2021 से मार्च 2022 तक चली। अमेरिका के स्टारबक्स के 200 स्टोरों के मज़दूर दिसंबर 2021 से लगातार वेतनों में बढ़ोतरी और बेहतर काम के हालातों के लिए हड़तालें कर रहे हैं। अगस्त में अमेरिकी यूनाइटेड डाक विभाग के 1 लाख कामगारों ने हड़ताल का ऐलान किया था, जिसके दबाव में सरकार को उनकी माँगें माननी पड़ीं। पिछले समय में लॉकडाउन के बुरे प्रभाव, पूँजीपतियों के बढ़ते मुनाफ़े बनाम काम के हालात के गिरते स्तर, बढ़ती क़ीमतों और दशकों से वेतन में बढ़ोतरी ना होने से सताए अमेरिकी मज़दूरों ने ना केवल हड़तालें की हैं, बल्कि संगठित होकर आंशिक जीतें भी हासिल की हैं।

यू.के. की धरती भी संघर्षों के पक्ष से बहुत उपजाऊ रही। यहाँ आई मंदी का सबसे अधिक बोझ झेल रहे यहाँ के मेहनतकश लाखों की गिनती में सड़कों पर उतर आए। दिसंबर 2022 से जनवरी 2023 तक यू.के. के राष्ट्रीय स्वास्थ्य विभाग की एक लाख नर्सों ने बड़ी हड़ताल की। 2023 में 50,000 रेलवे कामगारों, डाक विभाग के 1,15,000 कामगारों ने सरकारों से हक़ हासिल करने के लिए हड़तालें कीं। अगर बाक़ी यूरोप की बात करें तो पेंशन स्कीम को वापस करवाने के लिए फ़्रांस की सड़कें जाम करने वाले लाखों मज़दूरों को कैसे भुलाया जा सकता है। 2022 तक यूरोपीय संघ के देशों के 9.53 करोड़ लोग अति ग़रीबी के मुहाने पर खड़े थे। ऐसे समय में इटली, स्पेन, रोमानिया, बेल्जियम, जर्मनी, पुर्तगाल, सर्बिया और स्कॉटलैंड में लाखों लोग महँगाई, बेरोज़गारी, छँटनियों और बेहतर काम के हालातों के लिए हड़तालों, धरने-प्रदर्शनों का हिस्सा बने।

उपरोक्त विवरण पूँजीवाद के इन 'आदर्श महलों' के भ्रम को तोड़ रहे हैं। ख़ासकर इस भ्रम को कि इन देशों में मज़दूर ख़त्म हो गए हैं। इस झूठे दावे की हवा निकालता सच हमारे सामने है। अमेरिका, यूरोप की अर्थव्यवस्थाओं को हिलाकर रख देने वाली हड़तालें कर रहे ये लोग, क्या मज़दूर नहीं हैं?

एशिया की महाशक्तियाँ भी इस साल इस आग से बची नहीं रह पाईं। चीनी लेबर ब्यूरो के आँकड़ों के मुताबिक़ 2022 और 2023 के दौरान, 1500 से अधिक मज़दूर संघर्ष हुए। एवरग्रांदे कंपनी से शुरू हुए रियल एस्टेट के संकट के कारण केवल इसी क्षेत्र से संबंधित ही 1,777 विरोध प्रदर्शन केवल जून 2022 और अक्टूबर 2023 के दरमियान हुए, जिनकी शुरुआत निर्माण मज़दूरों ने अपनी रुकी हुई तनख़्वाहें देने की माँग रखकर की। हर महीने 50 से 70 संघर्ष हुए और हो रहे हैं, अगस्त 2023 में सबसे अधिक हुए, जिनमें से 100 संघर्ष मज़दूरों के नेतृत्व में हुए। ये हड़तालें और प्रदर्शन चीन के 297 शहरों तक फैले हैं। चीनी सत्ता की रोकों के कारण केवल इतने ही आँकड़े बाहर आ सके हैं। लेकिन इससे भी साफ़ है कि चीन में दमनकारी हुकूमत होने के बावजूद वह संघर्षों को रोक नहीं सकी। पूँजीवादी 'बुद्धिजीवी' एशिया की बात करते हुए अक्सर जापान के गुणगान करते हैं, लेकिन जापान की स्थिति भी कुछ अलग नहीं है। पिछले दो सालों में इस देश में 4,000 से अधिक छोटी-बड़ी हड़तालें हुई हैं। जिनमें निर्माण क्षेत्र, स्वास्थ्य सुविधाओं का क्षेत्र, नर्सिंग और काफ़ी अन्य क्षेत्र शामिल हैं।

अमेरिका और यूरोप के देशों में मज़दूरों ने केवल आर्थिक मसलों पर ही आवाज़ बुलंद नहीं की, बल्कि अपनी सरकारों को राजनीतिक मसलों पर भी घेरा है। फ़्रांस और अमेरिका में पुलिसिया दमन के ख़िलाफ़ फूटा जनाक्रोश इसका सबूत है। इसका सबूत इन देशों की सड़कों पर रूस-यूक्रेन जंग और इज़रायल के फ़िलिस्तीन पर किए जा रहे दमन के ख़िलाफ़ उतरे लाखों लोग हैं। भले ही जनवादी अधिकारों के लिए उठतीं इन आवाज़ों में अभी साम्राज्यवाद विरोधी आंदोलन का भ्रूण ही है, लेकिन क्रांतिकारी आंदोलन के लिए यह स्वागतयोग है।

पूँजीवादी अर्थशास्त्री मज़दूरों की क्रांतिकारी पहलक़दमी की जड़ 'कोरोना महामारी के कारण आई मंदी' को बता रहे हैं। लेकिन असल में इन संघर्षों के लिए तो लॉकडाउन से पहले ही ज़मीन तैयार हो चुकी थी। मिसाल के तौर पर 2018 में अमेरिका में 4,85,000 मज़दूरों ने हड़तालों में हिस्सा लिया, जो कि 1986 के बाद सबसे बड़ा आँकड़ा था। 'कोरोना महामारी' का बहाना इन बुद्धिजीवियों द्वारा असल समस्या को ढँकने के लिए इस्तेमाल किया जा रहा है। असल में यह पूँजीवादी व्यवस्था मुनाफ़े पर टिकी हुई व्यवस्था है, जो अपने अंदर ही अपनी तबाही के बीज लेकर चलती है। जब पूँजीपतियों के मुनाफ़े गिरते हैं, तो वह इससे बचने के लिए मज़दूरों की लूट को तेज़ करते हैं, जिसमें काम के घंटे बढ़ाना, काम का बोझ बढ़ाना या वेतन घटाना शामिल है। मुनाफ़े की यही हवस बेरोज़गारी, महँगाई और काम की बुरी हालतों जैसी बुराइयों को जन्म देती है। मज़दूरों की क्रांतिकारी पहलक़दमी इन बुराइयों के विरोध में संघर्ष खड़े करती है। लेकिन इस शोषक व्यवस्था की हदों के अंदर पूँजीवाद के अटल संकट से पार नहीं पाया जा सकता। इसलिए मौजूदा जन पहलक़दमी ही, पूँजीवादी लूट से रहित समाज यानी समाजवादी समाज के ज़रिए मज़दूरों और अन्य शोषित तबक़ों की मुक्ति करवा सकती है। इसलिए आज इन शानदार जन पहलक़दमियों को मज़दूर वर्ग के नेतृत्व में एक सूत्र में पिरोने की, इन्हें पूँजीवाद विरोधी और समाजवादी दिशा की ओर बढ़ाने की बड़ी चुनौती हमारे सामने है।

– जोबन

पाँच राज्यों में चुनावों के नतीजों के मायने

सांप्रदायिक फ़ाशीवादी उभार से लड़ने के लिए पूँजीवादी पार्टियों से उम्मीद छोड़ो!

एक मज़बूत मज़दूर आंदोलन खड़ा करो!

नवंबर 2023 में पाँच राज्यों में विधान सभा चुनाव हुए हैं। इनमें तीन राज्यों – राजस्थान, मध्य प्रदेश, और छत्तीसगढ़ में इस बार एकाधिकारी पूँजीपतियों की पसंदीदा पार्टी भाजपा ने एकतरफ़ा जीत हासिल की है। वहीं तेलंगाना में पूँजीपतियों की दूसरी और पुरानी भरोसेमंद पार्टी कांग्रेस ने कुर्सी हथियाने में सफलता पाई है। मिज़ोरम में भी सरकार बदली है और नई बनी पार्टी ज़ोरम पीपुल्स मूवमेंट ने मिज़ो नेशनल फ़्रंट को सत्ता से बेदख़ल कर दिया है। चुनावी नतीजे को देखकर कांग्रेस को भारी झटका लगा है, वहीं भाजपा सातवें आसमान पर है। कांग्रेस छत्तीसगढ़ और मध्य प्रदेश में अपनी जीत को पक्का मानकर बैठी थी और राजस्थान में अपने आपको जीत के नज़दीक समझ रही थी लेकिन नतीजों ने कुछ और ही कहानी बना दी है। आने वाले लोकसभा चुनाव में भाजपा को हराने के लिए "इंडिया" गठजोड़ का हिस्सा बने अलग-अलग राजनीतिक पार्टियों के पहलवान अखाड़े में उतरकर दंड-बैठक कर रहे थे। पर नतीजा देखकर उन सभी को साँप सूँघ गया है। दूसरी तरफ़ बुद्धिजीवियों का बड़ा हिस्सा जो 'भारत जोड़ो यात्रा' के बाद राहुल गाँधी पर लट्टू हुए पड़े थे और राहुल गाँधी को पंखी झुलाते हुए कह रहे थे कि यही एकमात्र योद्धा है, जो फ़ाशीवाद से बचा सकता है, को भी बड़ा झटका लगा है। बुद्धिजीवियों के ये समूह बेहोशी के आलम में चुनाव नतीजों के बाद यह अलाप रहे हैं कि "लोग मूर्ख है", "ई.वी.एम. ही एकमात्र कारण है भाजपा की जीत का" या "लोग है ही इसी लायक"। पाँच राज्यों के चुनाव नतीजों से ज़्यादा चर्चा का विषय भाजपा द्वारा लाए गए नए मुख्यमंत्री भी बने हुए हैं। आइए अब हम यह समझने की कोशिश करें कि भाजपा किस तरह जीत पाई और इस जीत के क्या अर्थ है।

छत्तीसगढ़ के चुनाव नतीजों की बात करें, तो यहाँ भाजपा ने 54 सीटें जीती हैं और भाजपा को 40% वोट मिले हैं, वहीं कांग्रेस ने 42 फ़ीसदी वोटो के साथ 35 सीटें जीती हैं। 2018 के चुनाव के समय कांग्रेस ने 43% वोटों के साथ 68 सीटें जीती थीं और भाजपा के वोट बैंक में 13% की बढ़ोतरी हुई है। भाजपा ने छत्तीसगढ़ के दो बड़े आदिवासी क्षेत्रों – सरगुजा और बस्तर में ताबड़तोड़ जीत हासिल की है। पिछली बार यहाँ कांग्रेस का हाथ ऊपर था। सरगुजा क्षेत्र में भाजपा ने 14 की 14 सीटें हासिल की हैं। कांग्रेस का डिप्टी मुख्यमंत्री टी.एस. शिंदे, जो कि राजघराने से ताल्लुक रखता है, वह भी इस क्षेत्र से चुनाव हार गया। बस्तर में भाजपा ने 12 में से 8 सीटें हासिल की हैं। इन दो क्षेत्रों ने भाजपा को जिताने में बड़ा योगदान दिया है, बाक़ी क्षेत्रों में कांग्रेस का हाथ ऊपर है।

आदिवासियों का कांग्रेस हुकूमत के साथ क्या ग़ुस्सा था, इस बारे में अंदाज़ा ही लगाया जा सकता है, अभी तक पूरे तथ्य सामने नहीं आए हैं, पर भाजपा द्वारा लोक-लुभावन वादे बड़े स्तर पर किए गए हैं। 2014 के चुनाव के बाद भाजपा ने किसी भी राज्य में जनकल्याण की योजनाओं का वादा नहीं किया था, लेकिन चुनाव जीतने के लिए और कांग्रेस की गारंटियों के चलते भाजपा ने हर समुदाय, ख़ासकर औरतों के लिए जनकल्याणकारी योजनाओं का वादा किया, जिसका फ़ायदा भाजपा को मिला। दूसरी तरफ़ भाजपा ने अपनी सांप्रदायिक और अंध देशभक्ति की तोप इस बार सँभाल कर रखी। कांग्रेसी हुकूमत भी कई वादों से मुकरी थी। इसका पता इस बात से लगता है कि कांग्रेस के कई मंत्री चुनाव हार गए और लोगों का झुकाव भाजपा की तरफ़ ज़्यादा रहा। वहीं अजीत जोगी की क्षेत्रीय पार्टी उसकी मृत्यु के बाद लगातार गिरावट की तरफ़ ही जा रही है। पिछली बार उसकी कारगुज़ारी बढ़िया रही थी, पर इस बार इसके हाथ कुछ नहीं लगा, जिसका फ़ायदा भाजपा को मिला। पिछले अनुभव भी यही बताते हैं कि जहाँ भी क्षेत्रीय पार्टी ख़त्म होती है, उसका फ़ायदा भाजपा को मिलता है। इन सभी कारणों से भाजपा को जीत मिली।

मध्य प्रदेश की बात करें, तो भाजपा ने यहाँ 49 फ़ीसदी वोटों के साथ 163 सीटों पर क़ब्ज़ा किया, वहीं कांग्रेस ने 41% वोटों के साथ 66 सीटें जीती हैं। 2018 के चुनाव के समय भाजपा और कांग्रेस दोनों का वोट बैंक 41% ही था। भाजपा ने 109 और कांग्रेस ने 114 सीटें जीती थीं। इस बार कांग्रेस का वोट बैंक वहीं खड़ा है, लेकिन भाजपा के वोट प्रतिशत में 8% की बढ़ोतरी हुई है। मध्य प्रदेश में भाजपा हुकूमत के विरुद्ध लोगों के मनों में भारी ग़ुस्सा था। भाजपा में भी आपसी भगदड़ मची हुई थी। लोगों के ग़ुस्से को शांत करने के लिए भाजपा को सांप्रदायिक, अंध-देशभक्ति की पटरी से उतरकर कल्याणकारी योजनाओं की पतली गली से निकलना पड़ा, क्योंकि भाजपा को इस बात का इल्म था कि सांप्रदायिक और अंध-देशभक्ति इस बार नहीं चलेगी। कांग्रेस हर राज्य के चुनाव में क़र्ज़ माफ़ी, बिजली, औरतों के लिए भत्ते आदि की योजनाओं के वादे करती है, जिसे वह गारंटी का नाम देती है और इस कारण उसे हिमाचल और कर्नाटक के चुनाव में फ़ायदा भी हुआ है। वहीं भाजपा के सांप्रदायिक और अंध-देशभक्ति की तोपें राज्यों के चुनाव में नहीं चलतीं, इसलिए भाजपा ने गाड़ी कांग्रेस के ही पीछे लगा रखी है। भाजपा ने मध्य प्रदेश में चुनाव के बिल्कुल तीन महीने पहले औरतों को हज़ार रुपए महीना, "लाडली बहन योजना" के तहत देना शुरू किया। कांग्रेस की गारंटियों की जगह मोदी की गारंटियों का नारा दिया और चुनाव में जीत हासिल करने में सफल रहे।

राजस्थान की बात करें, तो भाजपा ने यहाँ 42% वोटो के साथ 115 सीटें जीती हैं और कांग्रेस ने 40% वोटों के साथ 69 सीटें जीती हैं। पिछली बार भाजपा का वोट प्रतिशत 38 था और भाजपा के पास 73 सीटें थीं। कांग्रेस का वोट प्रतिशत 2018 के चुनाव के समय 39% था और कांग्रेस ने 100 सीटें जीती थीं। राजस्थान में गहलोत-पायलट का आपसी मन-मुटाव कांग्रेज की हालत को लगातार कमजोर कर रहा था। जब कांग्रेस ने अंदरूनी झगड़े ख़त्म किए, तभी भाजपा में अंदरूनी झगड़े शुरू हो गए। कांग्रेसी इसका फ़ायदा लेकर अपने आपको सत्ता के नज़दीक समझ रहे थे, पर उनकी उम्मीदों पर पानी फिर गया। राजस्थान का यह इतिहास रहा है कि 5 सालों के बाद वहाँ सरकार बदलती है। राजस्थान में रूढ़िवादी ताक़तों का काफ़ी बड़ा आधार है। साल 1947 के बाद राजस्थान में राजा-रजवाड़ों के प्रभाव के कारण राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ यहाँ काफ़ी मज़बूत रहा है। आर.एस.एस. के बड़े आधार और चुनाव के वादों के कारण इस बार चुनाव जीतने में भाजपा को कोई मुश्किल नहीं आई।

तेलंगाना में क्षेत्रीय पार्टी भारत राष्ट्रीय समिति के विरुद्ध लोगों में काफ़ी ग़ुस्सा था। इसलिए कांग्रेस ने हैदराबाद क्षेत्र को छोड़कर बाक़ी क्षेत्रों में जीत पक्की की। भाजपा कर्नाटक के बाद तेलंगाना में जीत के लंबे समय से सपने देख रही थी, पर चुनाव के नतीज़े से साफ़ है कि ऐसा नहीं हुआ और भाजपा दक्षिण भारत से लगभग बाहर हो गई है। मिज़ोरम में भी सत्ता विरोधी लहर थी, जिसका फ़ायदा 6 पार्टियों से मिलकर कुछ समय पहले ही बनी ज़ोरम पीपुल्स मूवमेंट ने लिया।

चुनाव नतीजों ने साफ़ कर दिया है कि भाजपा की सांप्रदायिक और अंध-देशभक्त नहीं चली और भाजपा की जीत में जनकल्याणकारी योजनाओं के वादों ने बड़ी भूमिका निभाई है। भाजपा ने चुनाव जीतने के लिए कांग्रेस की पटरी से ही चलना ठीक समझा। इसलिए अगर भारत में फ़ाशीवादी सत्ता होती, तो चुनाव जीतने के लिए ऐसे वादे ना करने पड़ते। इस बात का यह भी मतलब नहीं है कि यहाँ फ़ाशीवादी आंदोलन ही नहीं है। भारत में ख़ासतौर पर उत्तरी भारत में फ़ाशीवादी आंदोलन का अच्छा-ख़ासा प्रभाव है। इन राज्यों में भाजपा की जीत भले ही लोक-लुभावन वादों के कारण ही हुई है, लेकिन यह इस फ़ाशीवादी आंदोलन को और मज़बूत करेगी।

भाजपा द्वारा नए मुख्यमंत्रियों के चुनाव ने सबको हैरान कर दिया है। भाजपा ने राजस्थान में भजन लाल शर्मा को मुख्यमंत्री बनाया है, जो कि पहली बार ही एम.एल.ए. बना है। मध्य प्रदेश में मोहन यादव का चुनाव भी कुछ इसी तरह का ही है। इसके पीछे भाजपा की लंबे समय से चली आ रही केंद्रीयकरण की नीति – एक देश, एक धर्म, एक भाषा और एक प्रतिनिधित्व – ही है। इसी नीति को लागू करते हुए भाजपा ने अपने क्षेत्रीय प्रतिनिधित्व को लगभग निचले स्तर पर ला दिया है। सिर्फ़ यही राज्य रह गए

(पन्ना 11 पर जारी)

मालिक, प्रकाशक और मुद्रक रविंदर कौर द्वारा न्यू दशमेश प्रिंटर्ज, पता – 178-179, रणजीत नगर, जलंधर, पंजाब–144001 से मुद्रित और
उन्हीं द्वारा म.नं. 212, वी.पी.ओ. – पख्खोवाल, तहसील – रायकोट, ज़िला – लुधियाणा, पंजाब – 141108 से प्रकाशित। संपादक – लखविंदर सिंह